पंजीयन संख्या : 68939/98

ज्ञान तत्व

सत्यता एवं निष्पक्षता का निर्भीक पाक्षिक

MAY 2026

अंक - 04

मौलिक अधिकार और वर्तमान भारतीय वातावरण 3

492

किसकी बंधक है जीवन की मूल स्वतंत्रता - नरेन्द्र सिंह जी बनबोई उत्तर प्रदेश 5

MARGDARSHAK

प्रकाशन की तिथि - 16-05-2026 पोस्ट की तिथि - 31-05-2026

सिंहावलोकन

07 **प्रश्नोत्तर**

09 **पत्रोत्तर**

10 **नई समाज व्यवस्था**

साथियों के कलम से

13 **संस्कृति का युद्ध : एक शताब्दी के षड्यंत्र का पर्दाफाश- ज्ञानेन्द्र आर्य**

17 **जीवन पथ**

19 **संस्थागत समाचार**

पत्र व्यवहार का पता

बजरंग लाल अग्रवाल पोस्ट बाक्स 15, रायपुर (छ.ग.) 492021

website : margdarshak.info

प्रकाशक, संपादक व स्वामी - बजरंगलाल

9617079344

mail : Support@margdarshak.info

मुख्य कार्यालय-
ज्ञानयज्ञ परिवार आश्रम
रामानुजगंज छत्तीसगढ़ 497220
8318621282, 9630766001

लोक स्वराज अभियान
303 कृष्णा शिप्रा अजूरा अपार्टमेंट कौशांबी
गाजियाबाद 201012
9325683604, 9012432074

प्रधान संपादक
बजरंग लाल अग्रवाल
(बजरंग मुनि)

संपादक मण्डल
नरेन्द्र सिंह
संजय तिवारी
विपुल आदर्श

सहयोगी संपादक
ज्ञानेन्द्र आर्य

सदस्यता नियमन
संजय गुप्ता 872669477
कुशल दुबे 7999934238

सज्जा
लाल बाबू रवि

वितरण एवं मुद्रण सहयोग
रबीन्द्र विश्वास

मौलिक अधिकार और वर्तमान भारतीय वातावरण

बजरंग मुनि
प्रधान संपादक

दुनियां में प्रत्येक व्यक्ति के तीन प्रकार के अधिकार होते हैं- (1) मौलिक अधिकार (2) संवैधानिक अधिकार (3) सामाजिक अधिकार। मौलिक अधिकार को ही प्राकृतिक, मानवीय या मूल अधिकार भी कहते हैं। व्यक्ति के वे प्रकृति प्रदत्त अधिकार जिन्हें राज्य सहित कोई भीअन्य उसकी सहमति के बिना तब तक कटौतीनहीं कर सकता जब तक उसने किसी अन्यव्यक्ति के वैसे ही अधिकारों का उल्लंघन न किया हो, उन्हें मौलिक अधिकार कहते हैं। मौलिक अधिकार प्रकृति प्रदत्त होते हैं, संविधान प्रदत्त नहीं। संविधान तो व्यक्ति के मौलिक अधिकारों की सुरक्षा की गारण्टी मात्र देता है। मौलिक अधिकार समाज प्रदत या प्रकृति प्रदत यह विषय विवादास्पद हो सकता है किन्तु यह विवादास्पद नहीं है की सृष्टि के प्रारम्भ में ही समाज ने प्रत्येक व्यक्ति की स्वतन्त्रता को समाज ने मौलिक अधिकार घोषित कर दिया हो और आज तक वह उसी तरह चला आ रहा हो। मौलिक अधिकार सिर्फ एक ही होता है और वह होता है प्रत्येक व्यक्ति की असीम स्वतंत्रता। मौलिक अधिकार की कोई सीमा नहीं होती। अपने अधिकारों की सीमा व्यक्ति स्वयं तय करता है। इन अधिकारों की सीमा वहॉ तक होती है जहॉ से किसी अन्य की स्वतंत्रता की सीमा प्रारंभ होती हो। यदि किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता किसी अन्य की स्वतंत्रता में बाधक होती है तब संविधान या समाज इसमें हस्तक्षेप करता है, अन्यथा नहीं। मौलिक अधिकारों के चार भाग होते हैं-(1) जीने की स्वतन्त्रता (2) अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता (3) सम्पत्ति की स्वतन्त्रता (4) स्वनिर्णय की स्वतन्त्रता । ये चारों अधिकार सिर्फ व्यक्तिगत ही होते है, सामूहिक नहीं होते। ये अधिकार अहस्तांतर्णीय भी होते है अर्थात किसी अन्य के मौलिक अधिकारों का उपयोग बिना उसकी सहमति के कोई अन्य नहीं कर सकता। इस तरह व्यक्ति को किसी भी मामले में अपने विचार रखने का अधिकार मौलिक अधिकार है। किन्तु वह अधिकार किसी अन्य व्यक्ति पर प्रभाव नहीं डाल सकता। व्यक्ति को विचार अभिव्यक्ति तक ही स्वतंत्रता है किन्तु यदि कोई अभिव्यक्ति विचार प्रचार की दिशा में बदल जाती है तो वह संवैधानिक या सामाजिक अधिकार स्वरुप ग्रहण कर लेती है। कोई भी क्रिया विचार अभिव्यक्ति में नहीं शामिल होती। इस तरह नारे लगाना जुलूस निकालना विचार अभिव्यक्ति का भाग नहीं है । क्योंकि वह समूहगत है, विचार प्रचार है तथा दूसरों की स्वतंत्रता का हनन भी है। प्रत्येक व्यक्ति का यह स्वभाव होता है कि वह स्वयं तो अधिक से अधिक स्वतंत्रता चाहता है किन्तु दुसरों को अपनी इच्छानुसार संचालित होते हुए देखना चाहता है । यहीं से विवाद शुरु होता है। एक व्यक्ति शराब पीकर अपना और अपने परिवार का नुकसान कर रहा है। तो उसका पडोसी उसे बलपूर्वक इस नुकसान से रोकना अपना अधिकार समझता है। वह पडोसी यदि यज्ञ करता है और शराबी यह कहकर यज्ञ में बाधा पहुचाता है कि वह भूखा है और पडोसी घी तेल जला रहा है तब भी पडोसी उस शराबी को ही गलत कहता है क्योंकि शराब पीना बुरा है और यज्ञ करना अच्छा। ये दोनों ही नियम पडोसी ने बनाये हैं और दोनों में शराबी की सहमति नहीं है। मेरे विचार में यह व्यवस्था उस शराबी के स्वनिर्णय के मौलिक अधिकार का उल्लंघन है। आप उस शराबी को समझा सकते है, बहिष्कार कर सकते है किन्तु आप उसकी स्वतंत्रता में बाधा नहीं पहुचा सकते। आज ऐसा दिखता है कि सरकार तो अधिकांश मामलों में व्यक्ति के स्वनिर्णय तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का उल्लंघन करने के कानून बनाती ही है, कभी-कभी सामाजिक व्यवस्थाएं भी ऐसा अतिक्रमण करने लगती है। पांच प्रकार के कार्य ही मूल अधिकारों का उल्लंघन करते हैं- (1) चोरी, डकैती, लूट (2) बलात्कार (3) मिलावट, कमतौलना (4) जालसाजी, धोखाधडी, छलकपट (5) हिंसा, बलप्रयोग, आतंक। कोई छठवा कार्य ऐसा नहीं होता जिसे अपराध कहा जा सके। यदि कोई व्यक्ति इन पांच कार्यो से बच जाता है तो वह किसी के मौलिक अधिकार का उल्लंघन नहीं करता और उसे अपराधी नहीं कहा जा सकता।दुनियां में मौलिक अधिकार के संबंध में दो प्रकार के समूह है - (1) हम लोग जो मौलिक अधिकार को प्राकृतिक अधिकार मानते है और (2) वे लोग जो मौलिक अधिकार को संवैधानिक या सामाजिक अधिकार मानते है। साम्यवादियों को छोडकर अन्य सभी हिन्दू या इसाई हमारी विचारधारा के पक्षधर माने जाते है। तो साम्यवादी तथा अधिकांश मुसलमान दूसरी विचारधारा के माने जाते है। दोनो विचारधाराओं के बीच टकराव लम्बे समय से चल रहा है। पहली विचारधारा मानने वाले देशों में लोकतंत्र है तो दूसरी विचारधारा मानने वालों में अधिकांश तानाशाही है। भारत में लोकतंत्र है किन्तु भारत की राजनैतिक व्यवस्था में 70 वर्षो तक दूसरे प्रकार के लोगों का अधिक प्रभाव रहा। अब मोदी के बाद हम लोगों का प्रभाव बढना शुरु हुआ है। प्रत्येक व्यक्ति का एक ही सामाजिक दायित्व होता है और वह होता है सहजीवन अर्थात स्वयं सहजीवन का पालन करना और दूसरों को सहजीवन की ट्रेनिंग देना। कोई भी व्यक्ति अकेला न होकर परिवार, गॉव से लेकर समाज रुपी संगठन का सदस्य होता है। व्यक्ति जब परिवार का सदस्य होता है तब उसके मौलिक अधिकार तब तक संयुक्त हो जाते है जब तक वह उस परिवार का सदस्य है। इसका अर्थ हुआ कि परिवार में रहते हुए अपनी पारिवारिक सीमा के अंदर भी कोई व्यक्ति अपने मौलिक अधिकारों का

प्रयोग नहीं कर सकता जब तक परिवार की सहमति न हो। इसे हम इस प्रकार भी कह सकते है कि परिवार के प्रत्येक सदस्य के मौलिक अधिकार परिवार रुपी संगठन के पास अमानत के रुप में सुरक्षित रहते हैं जिनका उपयोग वह परिवार छोडने का निर्णय करके ही कर सकता है ,अन्यथा नहीं। यही मान्यता गॉव राष्ट्र या अन्य संगठनों के साथ भी उसकी होती है। सामान्यतया मौलिक अधिकार व्यक्ति के पास एक सुरक्षा कवच या हैंडब्रेक के समान होते है जो आपातकालीन तथाविशेषपरिस्थिति में ही उपयोग किये जा सकते है अन्यथा नहीं। इसका अर्थ हुआ कि मौलिक अधिकार की शायद ही कभी उपयोग करने की आवश्यकता पडती हो अन्यथा वे व्यक्ति के पास निष्क्रिय कवच के रुप में सुरक्षित रहते हैं। जो व्यक्ति बार-बार मौलिक अधिकार की दुहाई देता है या उपयोग करता है वह आदमी अच्छा नहीं माना जाता। इसी तरह कीविशेषपरिस्थिति में व्यक्ति को बलप्रयोग का भी अधिकार प्राप्त है। उसके लिए भी तीन परिस्थितियॉ आवश्यक हैं-(1) आपके मौलिक अधिकार का उल्लंघन होता हो (2) आपको न्याय प्राप्ति का कोई अन्य मार्ग उपलब्ध न हो (3) उस परिस्थिति से बच निकलने का कोई अन्य तरीका आपके पास न हो। यदि इन तीनों के अतिरिक्त आपने किसी अन्य आधार पर बल प्रयोग किया तो वह आपका अपराध माना जायेगा। दुर्भाग्य से हमारे संविधान निर्माताओं को इस बात का ज्ञान नहीं था कि मौलिक अधिकार की परिभाषा क्या है, इसलिए उन्होंने कुछ मौलिक अधिकारों को बाहर कर दिया। तो कुछ अनावश्यक अधिकारों को मौलिक अधिकार में शामिल कर लिया। आज अनेक नासमझ रोजगार, भोजन, शिक्षा, स्वास्थ, मतदान आदि को भी मौलिक अधिकार कहते फिरते हैं तो कुछ लोग धर्म आदि को मौलिक अधिकार में गिनते है। ये सब मौलिक अधिकार नहीं है ये या तो स्वनिर्णय के अन्तर्गत आते है या संवैधानिक अधिकारों के। सहजीवन व्यक्ति के लिए बहुत महत्वपूर्ण होता है । भारत में तीन संगठन ऐसे माने जाते है जो मौलिक अधिकारो को नहीं मानते । वे या तो राज्य को बडा मानते है या धर्म को या राष्ट्र को। वे तीन साम्यवाद, संगठित इस्लाम और सावरकरवादी समूह हैं। ये तीनों ही अधिकारों की तो बहुत बात करते है किन्तु कर्तव्यों की नहीं करते। जबकि सहजीवन के लिए सिर्फ कर्तव्य ही कर्तव्य आधार होते है, अधिकार नहीं। साम्यवाद सबसे खतरनाक विचारधारा है और संगठित इस्लाम सबसे अधिक खतरनाक जीवन पद्धति किन्तु धार्मिक इस्लाम नहीं। कोई भी साम्यवादी कभी सहजीवन के सिद्धांत को नहीं मानता। जहॉ वह अल्पमत में होगा वहॉ स्वतंत्रता की मांग करेगा और जहॉ बहुमत में होगा वहॉ सबकी स्वतंत्रता छीन लेगा। भारत का हर साम्यवादी पग-पग पर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करता दिखता है किन्तु कोई भी साम्यवादी चीन या रुस में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की वकालत नहीं करता। साम्यवाद की आंतरिक व्यवस्था में कोई साम्यवादी को प्रत्यक्ष रुप से कितनी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता है यह सब जानते है। भारत के साम्यवादी लोकसभा अध्यक्ष की दुर्गति भी हमने देखी है। इसी तरह इस्लाम में भी जो लोग संगठित इस्लाम से जुडे हुए है वे भी कभी सहजीवन को स्वीकार नहीं करते। टी.बी बहस में ऐसे अनेक दाढी वाले मुल्ला बैठकर अपनी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और धार्मिक स्वतंत्रता की दुहाई देते है किन्तु कभी पाकिस्तान में धार्मिक स्वतंत्रता की चर्चा नहीं करते। कभी ये मुल्ले यह नहीं कहते कि इस्लाम में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता किस सीमा तक है। आजकल कॉलेजों में यह साम्यवादी और कट्टरपंथी इस्लाम का गठजोड जिस तरह मौलिक अधिकारों की बात कर रहा है इससे ऐसा लगता है कि अब उनके अंत का समय आ गया है। अब भारत का आम नागरिक यह समझ गया है कि इन दोनों को सहजीवन सीखने के लिए मजबूर करना आवश्यक है। यही कारण है कि भारत का आम नागरिक सावरकरवादियों को एक बुराई समझते हुये भी शत्रु का शत्रु मित्र होता है के समान प्रिय लगने लगा है। मैं मानता हूॅ कि वर्तमान परिस्थितियों में संघ परिवार जो कुछ कर रहा है वह ठीक है। फिर भी मुझे लगता है कि संघ परिवार को शाहरुख खान, आमिर खान, प्रशांत भूषण सरीखे मध्यमार्गियों के साथ अच्छा व्यवहार करना चाहिए। हरमिंदर कौर और प्रशांत भूषण के कथन का दिया गया उत्तर तो उत्तर दाता की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता मानी जा सकती है किन्तु हरमिंदर कौर या प्रशांत भूषण का हिंसक विरोध किसी भी रुप में उचित नहीं कहा जा सकता । इस तरह की घटनाओं ने इनके प्रति समाज में सहानुभूति का भाव पैदा किया है। साक्षी महराज भी जब भी बोलते है तो वह भाषा कट्टरपंथी मुसलमानों से ही मेल खाती है किन्तु वर्तमान में उन्होंने जनसंख्या नियंत्रण समान नागरिक संहिता अथवा कब्रगाह की भूमि के मामले में जो कुछ कहा वह विचार करने योग्य है। यदि हम भारत की राजनैतिक स्थिति का ऑकलन करे तो भारत मौलिक अधिकारों की सुरक्षा की दिशा में निरंतर आगे बढ रहा है। अब साम्यवादी और कट्टरपंथी मुसलमानों का प्रभाव घट रहा है। देश की राजनीति में नरेन्द्र मोदी, नितीश कुमार, अखिलेष यादव प्रमुख राजनैतिक प्रतिद्वंदी के रुप में आगे आ रहे है। अरविंद केजरीवाल समेत अन्य सभी नेता पिछडने की दिशा में है। स्पष्ट है कि मौलिक अधिकारों के मामले में भारत की प्रगति संतोषजनक है। संघ परिवार से भी भविष्य में कोई खतरा नहीं है क्योंकि हिन्दुओं ने भले ही वर्तमान खतरे को टालने के लिए सावरकरवादियों को ढाल बनाया हो किन्तु खतरा टलते ही आम भारतीय सहजीवन को अपना मार्ग बना लेगा ऐसा विश्वास है। साम्यवाद तो अपनी बुरी स्थिति देखकर कट्टरपंथी इस्लाम के कंधे पर बंदूक रख चुका है। अब इस्लाम को समझना है

कि वह मौलिक अधिकारों की धारणा को स्वीकार करता है या अपने समापन का मार्ग प्रशस्त करता है । इसका निर्णय इस्लाम को करना है किसी अन्य को नहीं। या तो इस्लाम अपने कठमुल्लों का साथ छोडकर धार्मिक इस्लाम और सहजीवन की ओर बढेगा और या समाप्त होगा। दुनियां में औरविशेषकर भारत में मौलिक अधिकारों की सुरक्षा के लिए ये संभावनाए और आवश्यकताए स्पष्ट दिखती है।

किसकी बंधक है जीवन की मूल स्वतंत्रता - नरेन्द्र सिंह जी बनबोई उत्तर प्रदेश

मित्रों! सामान्यतः देखा जाता है कि समाज अधिकतर व्यवस्था से असंतुष्ट ही रहता है। भले ही वह व्यवस्था के नियंत्रण में रहे लेकिन वह उससे मुक्ति पाना चाहता है। दुनिया भर में समाज में बहुतायत पर लोकतंत्र की स्थापना के बाद भी व्यक्ति मात्र की यह धारणा है कि वह स्वशासन से दूर है कहीं न कहीं उसकी स्वतंत्रता किसी की बंधक है। इस विषय पर हमें चिंतन करना होगा। सदैव से ही, जब से व्यक्ति ने व्यवस्था शब्द के प्रभाव को स्वीकार किया है और व्यवस्था की स्थापना के लिए राजनीति को माध्यम बनाया है। तभी से समाज तथा राजनीति के बीच समाज के अधिकारों की सीमा तय करने का द्वन्द चलता रहा है। राजनीति स्वयं को समाज में व्यवस्था की स्थापना का परिणाम न मानकर उसकी स्थापना का कारक मानती रही है। मेरे विचार से समाज में अधिकारों के माध्यम सीमांकन का यह स्वरूप ठीक नही है। लेकिन प्रश्न उठता है कि यदि समाज में व्यवस्था की स्थापना हेतु राजनीति का स्वरूप स्वतंत्र नही होगा तो व्यवस्था की स्थापना किस प्रकार हो सकेगी? वास्तव में समाज को राजनीति के इसी स्वभाव पर विचार मंथन करना होगा। क्योंकि समाज में, राजनीति के माध्यम से हम जो व्यवस्था करते आये हैं उसमें राजनीति का स्वभाव आत्म निष्ठ रहा है, जबकि वह वस्तुनिष्ठ होना चाहिये। राजनीति ने अपने स्वभाव को कभी वस्तुनिष्ठ प्रदर्षित नहीं किया। इसका यह आत्मनिष्ठ स्वभाव ही युगो से जीवन की मूल स्वतंत्रता को रौंद रहा है और आने वाले समय में भी इसका यह स्वभाव समाज में संतुलित व्यवस्था की स्थापना का कारण नही बन सकेगा। इसके लिए तो हमें सत्य को अन्वेषित करना होगा। मेरे विचार में व्यवस्था शब्द के चरित्र का अभिव्यक्त सार यह है कि समाज इसे अपने परिवेष में इसलिए स्थापित करता है कि उसके जीवन चक्र में सुगमता बनी रहे। वह प्रबंधित रहे। राजनीति को अपने प्रबंध के अधिकार सौपने के पीछे समाज की केवल यही मंषा रही है। लेकिन अधिकार प्राप्त कर लेने के बाद राजनीतिक व्यवस्था ने समाज की इस आकांक्षा का सदैव ही दलन किया है। क्योंकि राजनीति कभी भी अपने इस उच्च श्रृंखल स्वभाव को नही नकार पायी कि समाज की गुलामी में ही उसका अस्तित्व सुरक्षित है। राजनीति अपनी इसी महत्वाकांक्षा की खातिर समाज पर व्यवस्था के नाम से नियंत्रण करने के लिए विभिन्न प्रकार से प्रयास करती रहती है। आधुनिक समाज में राजनीति द्वारा स्थापित लोकतंत्र का लोक नियुक्त स्वरूप भी समाज को इसी षड़यंत्र के तहत अपने नियंत्रण में रखने का प्रयास है। हमें जीवन की मूल स्वतंत्रता की रक्षा के लिए समाज की व्यवस्था मे राजनीति के इस षड़यंत्र से मुक्त करना होगा। इस स्थिति में यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि व्यवस्था का वह कैसा स्वरूप होगा जो समाज को युगो से चली आ रही राजनीतिक परतंत्रता से मुक्त कर देगा। मित्रों! वह व्यवस्था लोकतंत्र से इतर कुछ नहीं होगी। बस उसकी स्थापना के सैद्धांतिक ढांचे में इतना अंतर होगा कि वह व्यवस्था लोक नियुक्त के स्थान पर लोक नियंत्रित होगी। ऐसा होने पर शक्ति का केन्द्रीयकरण नही हो सकेगा। और ना तब व्यवस्था तंत्र से जुड़ने वाले लोग राजनीति की शक्ति का निजी स्वार्थो में प्रयोग कर पायेंगे। तब लोगो के मन में राजनीतिक विचार भाव कमजोर होगा और सामाजिक विचार भाव मजबूत होगा। इसी के साथ व्यवस्था के लोक नियंत्रित स्वरूप को और स्पष्ट करने के लिए व्यवस्था तथा नियंत्रण, इन दो शब्दों के व्यवहारिक स्वभाव पर भी पारदर्शी चिंतन होना चाहिए। राजनीति सदैव से ही समाज पर व्यवस्था के नाम से नियंत्रण का प्रयास करती रही है। मेरे विचार से व्यवस्था की स्थापना की यह प्रक्रिया गलत है। इन दोनों शब्दों के क्रियान्वयन का ठीक ढंग यह है कि राजनीति, समाज में व्यवस्था की स्थापना का माध्यम बने और समाज, राजनीति पर नियंत्रण रखे। समाज में राजनीति को इतनी स्वतंत्रता कभी नही मिलनी चाहिए कि वह निरंकुशता को अपना स्वाभाविक अधिकार मानने लगे।

इस स्थिति में अगला प्रश्न यह उठता है कि वर्तमान में स्थापित व्यवस्था के अनुसार राजनीति अपने निरंकुश स्वभाव को क्यों बदलना चाहेगी? वह अपने मूल स्वभाव के विरूद्ध क्यों आचरण करेगी? वस्तु स्थिति जीवन की मूल स्वतंत्रता को संरक्षण देने वाली व्यवस्था की स्थापना के लिए एक जन क्रांति का आह्वान करती है। लेकिन वह क्रांति किसी संस्था, संगठन या व्यक्तियों के अल्प समूह द्वारा आहूत न हो। वह किसी नेतृत्व की मोहताज न हो। बल्कि वह क्रांति जनसाधारण की वैचारिक चेतना का परिणाम हो। सम्पूर्ण जनमानस जिसका नायक हो। आदिकाल से आधुनिक काल तक समाज ने सत्ता के आक्रांताओं के विभिन्न रूप देखे हैं। दुनिया में राष्ट्र और राज्य की व्यवस्था के अन्तर्गत, कभी जीवन विदेशियों द्वारा स्थापित राजनीतिक व्यवस्था का गुलाम रहा है और कभी स्वदेशी तंत्र का। हमें राजनीतिक व्यवस्था के चरित्र में व्याप्त इसी दोष के उत्पन्न करने वाले सूत्र को समझना होगा। हमें यह तथ्य भी समझना होगा कि हम किसी अच्छी सरकार की स्थापना की कल्पना में कब तक गुलाम रह सकते हैं। और क्यों कोई अच्छी या बुरी सरकार अपने स्वभाव के विरूद्ध समाज को चिर स्वतंत्रता प्रदान करेगी।

क्योंकि मेरा यह मानना है कि कोई सबसे अच्छी सरकार भी स्वशासन का विकल्प नहीं हो सकती। इससे बेहतर तो यह है कि समाज अपनी वैचारिक चेतना जगाये और अपने अस्तित्व के अर्थ को समझे कि वह ही शक्ति का मूल स्त्रोत है। व्यवस्था का कारक है। इस विचार को समझते हुए हमें केवल स्वराज्य की स्थापना के लिए कृत संकल्प होना होगा। ऐसी अद्भुत और अनुपमक्रांति का वैचारिक ढांचा खडा करने का कार्य हमे मिल जुल कर करना है। हम अब अपनी विचार तरंगों के माध्यम से राजनीति को व्यवस्था का केन्द्र मानने वाले लोगों को यह चेतावनी दे देना चाहते हैं कि निकट भविष्य में व्यवस्था के उस अनुपम दर्शन की वह सार्वभौमिक व्याख्या होनी है जो जीवन को राजनीतिक गुलामी से मुक्त कर देगी। मुझे प्रतीत होता है कि बहुत जल्द समाज में इसका परिणाम दिखेगा और ईश्वर की कृपा से यह कार्य भारत की पुण्य धरा से ही प्रारम्भ हो चुका है क्योंकि यह आदि जगत गुरू का ही दायित्व बनता है कि वह मानव जाति से सार्वभौमिक स्वतंत्रता के मार्ग पर चलने का न केवल आह्वान करे बल्कि उसका मार्ग भी प्रशस्त करे। मुझे आशा है कि भारत का गुणी जन-मानस अपने इस दायित्व को अवश्य पूरा करेगा। समाज में यह कारण स्पष्ट है कि व्यक्ति की गुलामी का कारण व्यवस्था के स्वरूप का राजनीतिक केन्द्रीयकरण होना है समाज को यह तथ्य समझना होगा कि दृढ़ राज्य की कल्पना व्यक्ति मात्र के मन से समाज भाव को कमजोर करती है। क्योंकि ऐसे में राज्य स्वयं को ही समाज की स्वतंत्रता का रक्षक व उसे उसके अधिकार देने वाला सिद्ध करता है। हमें व्यक्ति मात्र के मन में समायी हुई इस गलत धारणा को निकालना होगा। इसकी पुष्टि के लिए विश्व के किसी भी कोने में हुई जनक्रांति का अध्ययन करेंगे तो पायेंगे कि समाज को स्वतंत्रता प्राप्त कराने के लिए हुई वे क्रांतिया कुछ लोगो के माध्यम से केवल राज्य की दृढ़ता बढ़ाने के उद्देश्य में सिमटकर रह गई है और एशिया महाद्वीप में तो प्रायः सभी प्रमुख देशों में ऐसी क्रांतिया हुई है। जिनका मूल उद्देश्य तो समाज को सार्वभौमिक स्वतंत्रता प्रदान कराना था। लेकिन वे केवल सत्ता परिवर्तन तक सिमट कर रह गयी क्योंकि स्वतंत्रता मिलने के बाद यहाँ व्यवस्था परिवर्तन के नाम पर तंत्र के सर्वेसर्वाओं ने राजनीतिक व्यवस्था का समाज द्वारा नियुक्त होने वाला ऐसा ढांचा खडा किया कि समाज अपनी स्वतंत्रता के अस्तित्व की पहचान ही भूल गया। हमें स्वतंत्रता के विचार को समाज के सामने पुनः परिभाषित करना होगा। क्योंकि कोई राज्य या उसका संविधान, समाज के रूप में स्थापित व्यक्तियों के समूह के अधिकारों की सीमा तय नहीं कर सकता। स्वतंत्रता तो स्वतः स्फूर्त होने वाला विषय है। यह समाज में व्यक्तियों के बीच परस्पर आधार पर प्रयोग का विषय भी है। इसकी मर्यादा तय करने की आवश्यकता नहीं होती। यदि राज्य, समाज की स्वतंत्रता का स्तर कानून के माध्यम से तय करता है तो यह उसका व्यक्तियों को गुलाम बनाने का अपना ढंग है। मैं राज्य के इस ढंग को समाज की स्वतंत्रता का भक्षक ही कहूँगा। हाँ! अपने विचार व्यक्त करते हुए मैं यहाँ पर यह बात अवश्य कहूँगा कि मेरा उद्देश्य, समाज द्वारा भारतीय राज्य के न्याय तथा सुरक्षा के दायित्व के विस्तार के क्षेत्र में हस्तक्षेप करने का कतई नही है। राज्य अपने इन दायित्वों का निर्बाध निर्वहन करें। मित्रो! जीवन को स्वतंत्रता का मूल स्वरूप प्रदान करने की शुरुवात हम व्यवस्था के मौजूदा स्वरूप का विकेन्द्रीयकरण करके कर सकते हैं। जो कि शक्ति के अकेन्द्रीयकरण के लक्ष्य को प्राप्त करके पूरा होगा। अब प्रश्न उठता है कि विकेन्द्रीयकरण की शुरुवात किस प्रकार हो? इसका एक उपाय लोकसंसद के गठन के रूप में है जो कि निम्न प्रकार है-

1. वर्तमान लोक सभा के समकक्ष एक लोकसंसद हो। जिसकी सदस्य संख्या, चुनाव प्रणाली तथा समय सीमा वर्तमान लोकसभा के समान हो। चुनाव भी लोक सभा के साथ हो किन्तु चुनाव दलीय आधार पर न होकर निर्दलीय आधार पर हो।
2. लोक संसद के निम्न कार्य होंगे- क. लोक पाल समिति का चुनाव।

ख. संसद द्वारा प्रस्तावित संविधान संषोधन पर निर्णय।

ग. सांसद, सर्वोच्च न्यायालय के न्यायधीश, मंत्री एवं राष्ट्रपति के वेतन, भत्ते संबंधी प्रस्ताव पर विचार और निर्णय।

घ. किसी सांसद के विरूद्ध उसके निर्वाचन क्षेत्र के अन्तर्गत सरपंचों के बहुमत से प्रस्तावित अविश्वास प्रस्ताव पर विचार और निर्णय।

च. लोक पाल समिति के भ्रष्टाचार के विरूद्ध शिकायत का निर्णय।

छ. व्यक्ति, परिवार, ग्राम सभा, जिला सभा, प्रदेश सरकार तथा केन्द्र सरकार के आपसी संबंधों पर विचार और निर्णय।

ज. किन्ही संवैधानिक इकाइयों के बीच किसी प्रकार के आपसी टकराव के न निपटने की स्थिति में विचार और निर्णय।

3. लोक सांसद का कोई वेतन भत्ता नहीं होगा।
4. लोक संसद का कोई कार्यालय व स्टाफ नहीं होगा। लोकपाल समिति का कार्यालय व स्टाफ ही पर्याप्त होगा।
5. यदि किसी प्रस्ताव पर लोक संसद तथा लोक सभा के बीच अंतिम रूप से टकराव होता है तो उसका निर्णय जनमत संग्रह से होगा।

इस प्रस्ताव को पुनः प्रस्तुत करके मैं अपनी ओर से यहाँ पर यह तथ्य भी प्रस्तुत करूँगा कि यह प्रस्ताव व्यवस्था के विकेन्द्रीयकरण की शुरुवात करने की दिशा में प्रयास भर है। कोई अंतिम विकल्प नही है। इसके गुण दोष की व्याख्या करते हुए समाज को राजनीतिक गुलामी से मुक्त करने के लिए यदि किसी महानुभाव द्वारा अन्य कोई

उपयुक्त विचार प्रस्तुत होता है तो हम उसे समाज तक पहुंचाने का हर संभव प्रयास करेगे। आइये! हम न केवल एक सी विचार धारा के लोग बल्कि विभिन्न विचार धाराओं को मानने वाले लोग भी साथ मिलकर समाज को उसकी स्वतंत्रता दिलाने के लिए जनसाधारण के मन में विचार क्रांति का सूत्रपात्र करें। हम समाज में विचार केन्द्रों का सृजन करें। सार्वभौमिक निष्कर्ष निकाले और भारत को उसके प्राचीन गौरव से जोडे। प्रस्तुत विषय को मैं इस आशा के साथ समाप्त कर रहा हूँ कि आप सब इस पुनीत कार्य में यथा योग्य सहयोग एवं सहभागिता करके ज्ञानक्रांति परिवार को कृतार्थ करेंगे।

मूल अधिकार संबंधी कुछ जानकारीयां

1 व्यक्ति के वे अधिकार जिनमें राज्य सहित कोई भी अन्य किसी भी परिस्थिति में उनकी सहमति के बिना कोई कटौती न कर सके जब तक उस व्यक्ति ने किसी अन्य व्यक्ति के वैसे ही अधिकारों में कटौती का अपराध न किया हो, उसे मूल अधिकार कहते हैं। मूल अधिकार चार होते हैं- 1. जीने का 2. अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का, 3. स्वनिर्णय का 4. सम्पत्ति का।

2 वर्तमान संविधान में वर्णित मूल अधिकार गलत परिभाषा के परिणाम हैं। धार्मिक स्वतंत्रता स्वनिर्णय के अन्तर्गत आ जाती है।रोजगार शिक्षा आदि वर्तमान समय में तो मूल अधिकार में है। किसी भी नागरिक के रोजगार या शिक्षा में कोई अन्य रूकावट नहीं डाल सकता। वर्तमान समय में मूल अधिकारों में और वृद्धि की मांग परिभाषा की अस्पष्टता का परिणाम है।

3 सम्पत्ति को मूल अधिकार में शामिल करने से जो क्षति होगी, निकालने से और अधिक क्षति होगी। यदि सम्पत्ति को मूल अधिकार से हटाया गया तो राज्य को सम्पत्ति के साथ छेड़ छाड़ करने के असीम अधिकार मिल जावेंगे।

4 मूल अधिकार प्राकृतिक होते हैं, संविधान से प्राप्त नहीं। संविधान तो इनकी सुरक्षा मात्र करता है।

5 संविधान जिन अधिकारों को समय-समय पर दे या ले सकता है वे संवैधानिक अधिकार होते हैं, मूल नहीं।

6 संविधान निर्माताओ को मूल अधिकार की परिभाषा का ज्ञान नही था इसलिये उन्होने किन्ही भी अधिकारो को मूल अधिकार कहना शुरू कर दिया।

7 तानाशाही मे मूल अधिकार पूरी तरह समाप्त हो जाते है।

8 मूल अधिकार ही लोकतंत्र की पहचान होते है।

9 चालाक लोग शिक्षा स्वास्थ्य, रोजगार आदि को मूल अधिकार बता बता कर मूल अधिकार की परिभाषा को विकृत करतें हैं ये सब अधिकार संवैधानिक अधिकार होतें हैं मूल अधिकार नही। कुछ ना समझ लोग तो मतदान के अधिकार को भी मूल अधिकार कहना शुरू कर देतें हैं।

10 सम्पत्ति संग्रह प्रत्येक व्यक्ति का मौलिक अधिकार होता है। और कोई भी अन्य उसकी स्वतंत्रता मे बाधा नही पहुंचा सकता।

11 प्रत्येक व्यक्ति के मौलिक अधिकारों की सुरक्षा तथा उच्चश्रृंखलता पर नियंत्रण तंत्र का दायित्व होता है तथा समाज का कर्तव्य। समाज उच्चश्रृंखलता को सिर्फ अनुशासित ही कर सकता है, नियंत्रित नहीं। क्योंकि समाज को दंडित करने का अधिकार नहीं है।

12 इस्लाम और साम्यवाद घोषित रूप से मौलिक अधिकारों को अस्वीकार करते है। इस्लाम और साम्यवाद का अस्तित्व समाज के लिये सबसे बडा संकट है। पूरी दुनियां को चाहिये कि इन दो विचारधारा के लोगों को या तो सामाजिक व्यवस्था मानने के लिये सहमत करे या बाध्य करे;

13 भारत में प्रत्येक नागरिक को समान प्राकृतिक अधिकार प्राप्त हैं।उसमें न बहुसंख्य कोई कटौती कर सकता है न ही अल्पसंख्यक। भारत के प्रत्येक नागरिक को सामाजिक मामले में अपने-अपने अधिकार प्राप्त हैं। सामाजिक स्वतंत्रता में कोई कानून हस्तक्षेप नहीं कर सकता। सिर्फ संवैधानिक मामलों में ही अधिकारों में कम-ज्यादा कर सकते हैं।

14 गोपनीयता व्यक्ति का मौलिक अधिकार हो सकती है किन्तु नागरिक का मौलिक अधिकार नहीं है।

15 यदि सौ लोगो की जान बचाने के लिये एक निर्दोष व्यक्ति के प्राणो की आवश्यकता है तब भी उसकी सहमति के बिना उसकी प्राण लेना लोकतंत्र नही है क्योंकि लोकतन्त्र में मौलिक अधिकारों की सुरक्षा की गारंटी संविधान देता है, और संविधान की रक्षा राज्य करता है।

16 मौलिक अधिकर का अर्थ यह नहीं है कि कोई अन्य आपकी सहायता के लिए बाध्य है। यह सहायता समाज का कर्तव्य है।

17 मनुष्य को छोडकर किसी अन्य जीव को मौलिक अधिकार प्राप्त नहीं है। पशु-पक्षी या पेड-पौधे का कोई मौलिक अधिकार नहीं होता।

प्रश्नोत्तर

1 प्रश्न- असीम और समान स्वतंत्रता का क्या मतलब है ।

उत्तर- मै मौलिक अधिकारो पर चर्चा करते समय असीम समान स्वतंत्रता शब्द का प्रयोग करता हूँ। सामान्यतया असीम और समान विरोधाभाषी है। मेरा आशय यह रहता है कि किसी भी व्यक्ति की स्वतंत्रता की कोई सीमा न कोई अन्य व्यक्ति बना सकता है न सरकार और न ही समाज। इसलिये यह असीम स्वतंत्रता है। दूसरी ओर आपकी स्वतंत्रता की तरह ही प्रत्येक व्यक्ति को उतनी ही स्वतंत्रता होने से वह समान भी है। इसका अर्थ हुआ कि आपकी स्वतंत्रता की सीमा वही तक है जहां से किसी अन्य की सीमा शुरू होती है। यदि दो व्यक्तियो की सीमाए आपस मे

टकराती है तब राजनैतिक सामाजिकव्यवस्था सीमाओ का निपटारा करती है। इस तरह हर व्यक्ति की सीमा भी है। फिर भी मै असीम शब्द लिखता हूँ। क्योंकि असीम समान के अतिरिक्त मुझे कोई उपयुक्त शब्द नही मिलता।

2 प्रश्न- जब व्यक्ति द्वारा संपूर्ण समर्पण उसकी मजबूरी है तब उसकी स्वतंत्रता का क्या महत्व है?

उत्तर- प्रत्येक व्यक्ति को यह स्वतंत्रता है कि वह किसके साथ जुडे और कब तक जुडा रहे। कोई भी व्यक्ति कभी भी किसी संगठन को छोड सकता है।

3 प्रश्न- क्या पूरी दुनियां में कहीं ऐसी मान्यता है जैसे आप लिख रहे है?

उत्तर- मैं जानता हूँ कि अभी दुनियां में ऐसी मान्यता नहीं है। दुनियां में यह माना जाता है कि संविधान मौलिक अधिकारों को परिभाषित करता है। मेरे विचार से यह मान्यता गलत है क्योंकि मौलिक अधिकार प्राकृतिक होते है संवैधानिक नहीं।

4 प्रश्न- क्या प्रत्येक व्यक्ति के मौलिक अधिकार समान होते है चाहे वह किसी भी देश का हो?

उत्तर- प्रत्येक व्यक्ति के मानवाधिकार समान होते है। देश काल परिस्थिति से उसका कोई संबंध नहीं है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति के मानवाधिकार कम ज्यादा नहीं हो सकते। संवैधानिक अधिकार और सामाजिक अधिकार कम ज्यादा हो सकते है। जिन देशों में मौलिक अधिकार को स्वीकार नहीं किया है वे गलत हैं। ऐसे देशों को ही हम तानाशाह कहते हैं ।

5 प्रश्न- कोई व्यक्ति यदि दूसरे देश में जाता है तो उसके सामने क्या बाधा आ सकती है ?

उत्तर- कोई भी व्यक्ति यदि किसी अन्य देश मे जाता है और रहता है तो उसे भले ही उस देश के नागरिक अधिकार प्राप्त न हो किन्तु उसके सामाजिक अधिकार सुरक्षित रहते है। दुनिया का कोई भी कानून उस व्यक्ति की सहमति के बिना उसके प्राकृतिक अधिकारो मे किसी प्रकार की कोई कटौती नही कर सकता। व्यक्ति एक सर्व सम्प्रभुता सम्पन्न प्राकृतिक इकाई के रूप मे होता है और उसकी सहमति के बिना उसी स्वतंत्रता की कोई सीमा नही बनाई जा सकती। यदि किसी राष्ट्र मे कोई कानून बनता है तो उस कानून के बनाने मे उस राष्ट्र के अंतर्गत आने वाले प्रत्येक व्यक्ति की सहमति आवश्यक है। इसका अर्थ हुआ कि जब प्रत्येक व्यक्ति राष्ट्र से भी उपर समाज का अंग है तब सम्पूर्ण विश्व की भी कोई एक ऐसी व्यवस्था अवश्य होनी चाहिये जिसकी सहमति या स्वीकृति से ही किसी व्यक्ति के मौलिक अधिकारो को छीना जा सके। अब तक दुनियां मे ऐसी कोई व्यवस्था बन नही सकी है भले ही आंशिक रूप से इस दिशा मे कुछ प्रयत्न हुए भी और धीरे धीरे आगे बढ भी रहे है।

6 प्रश्न- आपने अपने लेख में लिखा है की संपत्ति एक मौलिक अधिकार है और बिना व्यक्ति की सहमति के किसी की संपत्ति सरकार नहीं ले सकती तो आप बताइये की सरकार कोई टैक्स कैसे ले सकती है।

उत्तर- पहली बात तो यह है की संविधान बनाने में प्रत्येक व्यक्ति की सहमति मानी जाती है। ऐसी परिस्थिति में यदि संविधान के अनुसार कोई टैक्स लिया जाता है तो वह गलत नहीं है। दूसरी बात यह है की हम किसी भी टैक्स की सहमति नहीं दे रहे है। नयी संवैधानिक व्यवस्था में सिर्फ एक टैक्स होगा सुरक्षा कर इसे आप फीस भी मान सकते है क्योंकि वह तो आपकी सुरक्षा के बदले लिया जा रहा है इसलिए मौलिक अधिकार के उल्लंघन का कोई आरोप नहीं लग सकता।

7 प्रश्न- जब व्यक्ति की असीम स्वतन्त्रता उसका मौलिक अधिकार है तब यदि कोई व्यक्ति अकेला रहना चाहे तो उसे कैसे रोका जा सकता है।

उत्तर- सैद्धांतिक रूप से किसी को अकेला रहने से रोका नहीं जा सकता किन्तु व्यावहारिक धरातल पर ऐसा होना असंभव है किसी भी व्यक्ति की सुरक्षा समाज की ज़िम्मेदारी है और उस समाज का अंग होना उस व्यक्ति के लिए भी अनिवार्य है। यदि कोई व्यक्ति अकेला रहता है इसका अर्थ हैं की वह समाज का अंग नहीं है और जब वह दूसरों की सुरक्षा में अपना योगदान शामिल नहीं करता तब उसकी सुरक्षा की गारंटी कौन देगा। इस तरह स्वतन्त्रता व्यक्ति का मौलिक अधिकार होते हुए भी सहजीवन उसकी अनिवार्यता मानी जाएगी। इस तरह कोई व्यक्ति किसी भी परिस्थिति में अकेला रह ही नहीं सकता है।

8 प्रश्न- श्री ज्ञानेन्द्र मिश्र नैनी इलाहाबाद मार्च 2005

प्रश्न- देश के संभावित भावी कर्णधार राहुल गांधी ने कांग्रेस चिन्तन शिविर में पार्टी के आर्थिक सुधार कार्यक्रमों की आलोचना सुनने से इन्कार करके राजनैतिक असहिष्णुता का परिचय दिया है। उन्हें पार्टी कार्यकर्ताओं के विरोधी स्वर इस तरह दबाने की तानाशाही मनोवृत्ति से बचना चाहिये। अन्यथा स्वर्गीय संजय गांधी और राहुल गांधी में क्या अन्तर रह जायगा। राहुल जी ने उस शिविर में पेप्सीकोला और कोकाकोला शीतलपेय कम्पनियों का यह कह कर बचाव किया कि उसमें कीटनाशक जान बुझकर नहीं मिलाये गये थे बल्कि दूषित भूगर्भ जल का परिणाम मात्र है। क्या राहुल जी को यह कहना चाहिये था? यदि यह सच भी हो तो उन्हें इस तरह विदेशी कम्पनियों का पक्ष लेना शोभा नहीं देता? मैं आपसे जानना चाहता हूँ कि इस संबंध में आपके विचार क्या है?

उत्तर- आपने इस संबंध में गंभीर प्रश्न उठाया है। मैंने दैनिक नवभारत की बाइस जनवरी के अंक में सम्पादकीय के रूप मे बेबाक टिप्पणी के अन्तर्गत भी ऐसे ही विचार पढ़े हैं। समाचार पत्र के लेखक की राय भी वैसी ही है जैसी आपकी। राहुल जी ने कांग्रेस के चिन्तन शिविर में आर्थिक सुधार कार्यक्रमों की आलोचना सुनने वाले को किन परिस्थितियों में रोका उन स्थितियों को जाने बिना कुछ

टिप्पणी करना ठीक नहीं। मेरा अपना अनुभव है कि कई लोग समय की महत्ता विषय चर्चा की प्राथमिकताएँ उनके कथन कि सारगर्भिता आदि का विचार किये बिना बोलते रहते है। या अनावश्यक एक ही बात को बार बार बोलते हैं जिन्हें जब रोका जाता है तो उन्हें बुरा लगता है। सहिष्णुता का अर्थ अव्यवस्था नहीं माना जाना चाहिए मैं नही समझता कि राहुल जी ने वक्ताओं को इसलिये अपनी बात कहने से रोका होगा कि वे आर्थिक सुधारों के विरूद्ध बोल रहे हैं और यदि किसी मुद्दे पर अन्तिम रूप में कोई नीति बन जाने और घोषित हो जाने के बाद भी ऐसे विरोध की रट लगाये हो तो उन्हें व्यवस्थित करने हेतु रोकने से मैं सहमत हूँ। स्थिति क्या थी। मैं नहीं कह सकता। किन्तु प्रश्नकर्ता तथा नवभारत के सम्पादकीय का दूसरा अंश बिल्कुल विपरीत है। प्रश्न का पहला भाग कार्यकर्ताओं की विचार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का पक्षधर है दूसरा अंश राहुल गांधी की विचार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का विरोधी। क्या राहुल गांधी को वहाँ वह नहीं बताना चाहिये जो वे सच समझते हैं। कोकाकोला और पेप्सीकोला में कीटनाशक का होना कितना यथार्थ है और कितना भावनात्मक यह बात तो अवश्य विचारी जानी चाहिए। मैं विदेशी उत्पादों के प्रयोग के विरूद्ध हूँ क्योंकि इससे स्थानीय रोजगार के अवसर घटते हैं किन्तु मैं इस विरोध को भावनात्मक स्वरूप प्रदान करने के पक्ष में नहीं। कुछ भारतीय कम्पनियों से धन लेकर या राजनीतिक उद्देष्यों को ध्यान में रखकर जो विरोध होता है। वह पेषा भले ही हो किन्तु विरोध नहीं। जब भाजपा विरोध में होती है और कांग्रेस सत्ता में तब दोनों की इस संबंध में जो भाषा होती है वह भाषा सत्ता बदलते ही बदल जाती है इस फेर बदल को कोई अर्थ नही है साथ ही उस विरोध को भी कोई अर्थ नही है जिन्हें सब काम छोड़कर विरोध करना ही है। मैं उस विरोध को महत्वपूर्ण मानता हूँ। जो गुण दोष की समीक्षा की सच्चाई न दिखकर विदेशी कंपनियों के विरोध की ठेकेदारी का अधिक आभास होता है। जो ठीक नहीं है। मैं पेप्सीकोला कोकोकोला के प्रदूषण के विषय में अब तक सच्चाई नहीं जान सका कि बात क्या है? यदि राहुल जी की बात सच है तो फिर भारतीय शीतल पेयों में भी वैसा ही प्रदूषण होना चाहिये। यदि स्थानीय भारतीय शीतल पेय प्रदूषण रहित है तो राहुल गांधी की बात गलत है। उन्हें इस तरह विदेशी कम्पनियों का पक्ष नहीं लेना चाहिये और यदि भारतीय शीतल पेयों में भी प्रदूषण वैसा ही जैसा कोला पेय में तो फिर प्रदूषण के नाम पर विरोध क्यों है? मैं दोनों के सच जाने बिना कुछ कह नहीं सकता क्योंकि कम्पनियों को बनाने और बेचने की छूट देकर गलत करता है। मैं भी उससे सहमत था। मैंने बहुत पता किया तो मालूम हुआ कि रासायनिक खाद विदेशी कम्पनियों को यही बनाने की छूट देने से आयात की समस्या नही रहेगी। मुझे इनका भी तर्क ठीक जॅचा। दोनों पक्ष एक साथ बैठकर चर्चा करें तब तो आम लोग जाने कि सच्चाई क्या है दोनों पक्ष पृथक पृथक प्रचार करें तो समझना बहुत कठिन होता है और यदि एक पक्ष अपने कथन के पक्ष मैं वैचारिक तर्क के स्थान पर भावनात्मक प्रचार का सहारा लेने लगे तो निर्णय और भी कठिन होता है। मेरे एक सर्वोदयी मित्र ने हमारी दिल्ली की बैठक में कोकाकोला आने पर आपत्ति प्रकट की। मैं स्वयं इन सबका उपयोग नहीं करता। अतः मैंने भी भविष्य के लिय सर्तक किया। किन्तु मेरे मित्र तो साक्षात् दुर्वासा ही हो गये और कोला वापस करने की बहुत जिद करने लगे। मैं उनकी जिद के समक्ष झुक गया किन्तु मैंने अपने सर्वोदय मित्र पर कटाक्ष किया कि एक विदेशी महिला भारत में विवाह करके आपकी नजर में इतनी स्वदेशी बन जाती है और भूल से की गई आयोजकों की गलती के लिये आप आसमान सर पर उठा रहे है। तब वे मित्र चुप हुए। मुझे इन आतिवादी सिद्धान्तों से दुख होता है। मैं चाहता हूँ कि वैचारिक मुद्दों को भावनात्मक स्वरूप देने से बचा जाये। आपने मुझे प्रश्न पूछा जिसका मैंने अपनी समझ से उत्तर दिया। मैं भी कुछ प्रश्न भेज रहा हूँ। आप मित्रों से उम्मीद है कि आप उत्तर देकर मेरी जिज्ञासा शान्त करेंगे।

(1) विदेशी कम्पनियों के शीतल पेय और स्वदेशी कम्पनियों के शीतल पेयों के बीच हानिकारक तत्वों में समानता है या अन्तर। यदि अन्तर है तो क्यों विदेशी कम्पनियॉ उस अन्तर को दूर क्यों नही कर पाती। यदि अन्तर नहीं है तो विदेशी विरोध के लिये कीटनाशक प्रयोग को मुद्दा बनाना कितना उचित है और कितना न्यायोचित ?

(2) स्वदेशी आन्दोलन ग्यारह मौलिक समस्याओं में से किन किन का समाधान है। यह आंदोलन हमारी प्राथमिकताओं में सबसे उपर होना चाहिए या आन्दोलन के अन्य विषयों के साथ।

(3) हम भारत की स्वदेशी व्यवस्था का जो आर्थिक स्वरूप प्रस्तुत कर रहे हैं उसमें मूलभूत आवश्यकता की तथा श्रम निर्मित सभी प्रकार की वस्तुओं को पूरी तरह कर मुक्त करके कृत्रिम उर्जा पर भारी कर की सिफ़ारिश शामिल है इससे आवागमन मंहगा होगा छोटे उद्योग मजबूत होंगे और इसके परिणाम स्वरूप विदेशी कम्पनियाँ स्वत फेल हो जायेंगी। विदेशी कम्पनियों पर से पूरी तरह कानूनी या सामाजिक विरोध को समाप्त करके यदि ऐसा आर्थिक समाधान कर दें कि साँप भी मर जाये और लाठी भी बची रहे तो आप इससे कितना सहमत हैं?

(4) स्वदेशी आन्दोलन कितना भावनात्मक है और कितना तर्क संगत आशा है कि पाठक इस संबंध में उत्तर देंगे।

पत्रोत्तर

सत्यपाल शर्मा, बरेली, उत्तर प्रदेश

प्रश्न- वर्तमान समय में भारत में रेलों का संचालन प्राइवेट सेक्टर में जा रहा है। वंदे भारत ट्रेनों की संख्या बढ़ाई जा

रही है और गरीब लोगों की यात्रा बहुत कष्टकारक हो गई है। लोकतंत्र धरातल पर न आकर एक दिखावा बन गया है। सरकार करोड़ों रुपये खर्च करके मीडिया से अपनी प्रशंसा कराती है और मीडिया इस बात को नहीं उठाता कि ट्रेनों में गरीबों की क्या स्थिति है? उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री आदित्यनाथ जी जिस तरह गरीबों की बात सुनते हैं, उस आधार पर मैं कह सकता हूँ कि भारत का प्रधानमंत्री योगी आदित्यनाथ को होना चाहिए।

उत्तर- मैं आपसे सहमत हूँ कि लोकतंत्र में बुराइयाँ आ गई हैं और लोकतंत्र का समाधान लोक स्वराज्य से ही हो सकता है, लेकिन वर्तमान भारत में कोई भी राजनीतिक दल लोक स्वराज्य पर विचार करने के लिए तैयार नहीं है। मैं इस बात से भी सहमत हूँ कि मीडिया को स्वतंत्र होना चाहिए, लेकिन मैं इस बात से सहमत नहीं हूँ कि रेल यात्रा को और सस्ता कर दिया जाए। जब आम लोगों की आर्थिक स्थिति तेजी से सुधार रही है, तो उसी के अनुसार रेल यात्रा को भी महंगा किया जाना चाहिए। वर्तमान सरकार कृषि उत्पादन पर कई तरह के टैक्स लगा रही है और रेलों पर खर्च कर रही है। यह उचित नहीं है। रेल यात्रा सुविधा का माध्यम है, आवश्यकता का नहीं, इसलिए मैं रेलों का किराया बढ़ाए जाने का पक्षधर हूँ।

नयी समाज व्यवस्था :

1 लोकतंत्र से लोक स्वराज की ओर

नई समाज व्यवस्था के अंतर्गत संपूर्ण व्यवस्था परिवर्तन का संदेश दे रहे हैं। हम वर्तमान समस्याओं की सूची और उनका वर्णन मात्र नहीं करते, हम उन समस्याओं का कारण भी बताते हैं। हम उन समस्याओं का समाधान भी बताते हैं और हम उन समस्याओं का समाधान करना शुरू भी करते हैं। हम फेसबुकिया लोग नहीं हैं कि फेसबुक पर दिनभर सवाल-जवाब करने तक ही अपने को सीमित कर लें। हम फेसबुक पर ऐसे लोगों को धन्यवाद कहकर पिंड छुड़ा लेते हैं। हम वैचारिक, बौद्धिक से लेकर फील्ड वर्क तक कार्य कर रहे हैं। हमारे साथी प्रतिदिन रात को डेढ़ घंटा ज़ूम पर बैठकर मानसिक व्यायाम करते हैं। वे दुनिया की, भारत की, सब प्रकार की समस्याओं के समाधान पर विचारों का आदान-प्रदान करते हैं। यह कार्य 2 वर्षों से चल रहा है। हमारे साथी देशभर में घूम-घूमकर नए साथियों को तैयार कर रहे हैं क्योंकि संपूर्ण व्यवस्था परिवर्तन हमारा लक्ष्य है। हम वर्तमान लोकतंत्र को लोक स्वराज में बदलने के लिए देशभर में जन-जागरण कर रहे हैं। हम परिवार व्यवस्था में वर्तमान कमजोरी पर समाज के बीच में खुली चर्चा कर रहे हैं। हम दुनिया भर में आए पर्यावरण संकट पर भी समाज को समाधान बता रहे हैं। इस तरह हम राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक सब प्रकार की समस्याओं के समाधान पर एक तरफ जन-जागरण कर रहे हैं और एक तरफ उनके समाधान का प्रयत्न भी कर रहे हैं। हमें इस बात पर संतोष है कि पूरे भारत से हमें सकारात्मक सहयोग मिल रहा है। हम नई तकनीक का पूरा प्रयोग कर रहे हैं। फेसबुक, व्हाट्सएप, ज़ूम का भी उपयोग किया जा रहा है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि व्यवस्था परिवर्तन के मामले में हम भले ही अकेले चल रहे हैं, लेकिन योजना बनाकर चल रहे हैं, सोच-समझकर चल रहे हैं, किसी बदलाव की दिशा में चल रहे हैं और सफलता की पूरी उम्मीद है। व्यवस्था परिवर्तन की दिशा में देशभर में जो अन्य संस्थाएं कार्य कर रही हैं, उन संस्थाओं को हम बाहर से सहयोग भी करने के लिए तैयार हैं।

2 नई समाज व्यवस्था में असीम स्वतंत्रता का सिद्धांत

नई समाज व्यवस्था में हम प्रत्येक व्यक्ति को असीम स्वतंत्रता की गारंटी देंगे। कोई भी व्यक्ति किसी भी व्यक्ति के साथ जुड़कर रह सकता है और कभी भी किसी के साथ संबंध तोड़ सकता है। कोई भी संपत्ति वह अपने पास रख सकता है। संपत्ति की कोई सीमा नहीं बनाई जाएगी। वह अपना साथी बदलते समय अपनी पूरी संपत्ति लेकर जा सकता है। किसी भी व्यक्ति को देश छोड़ने की भी पूरी स्वतंत्रता होगी। उसकी संपत्ति किसी भी परिस्थिति में रोकी नहीं जाएगी। इस तरह हम प्रत्येक व्यक्ति को असीम स्वतंत्रता की गारंटी देते हैं। यदि कोई व्यक्ति किसी दूसरे की स्वतंत्रता में बाधा पहुंचाता है, तब व्यवस्था उस बाधा पहुंचाने वाले को उस संविधान के अनुसार दंडित करने की गारंटी देगी, जिस संविधान को उस व्यक्ति ने मिलकर बनाया है। व्यवस्था बनाने में सब लोग शामिल रहेंगे। इसका अर्थ यह है कि व्यवस्था बनाने में वह व्यक्ति भी शामिल है। जो व्यवस्था बनेगी, उस व्यवस्था का उसे पालन करना ही होगा। वह उस व्यवस्था को कभी भी छोड़ सकता है, लेकिन तोड़ नहीं सकता। इस तरह हम नई व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति की असीम स्वतंत्रता की गारंटी देंगे।

3 व्यक्ति की स्वतंत्रता नई समाज व्यवस्था का मूल आधार

नई समाज व्यवस्था पर चर्चा। हम व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता को उसका मौलिक अधिकार समझते हैं। किसी भी व्यक्ति की स्वतंत्रता को तब तक बाधित नहीं किया जा सकता, जब तक उसने किसी अन्य की स्वतंत्रता में बाधा न पहुंचाई हो। इस सिद्धांत का पूरी तरह पालन किया जाएगा। किसी भी व्यक्ति की स्वतंत्रता किसी भी समझौते के अंतर्गत तब तक ही सीमित मानी जाएगी, जब तक वह स्वयं उस समझौते से अपने को बंधा हुआ मानता है। यदि

कोई ऐसा समझौता हुआ है, जिसमें स्वतंत्रता के साथ समझौता किया गया है, तो उस समझौते को किसी भी समय तोड़ा जा सकता है। उसके बाद राजनीतिक एवं संवैधानिक व्यवस्था जो निर्णय देगी, वह माना जाएगा, लेकिन किसी व्यक्ति को समझौता तोड़ने से नहीं रोका जा सकता। स्पष्ट है कि व्यक्ति के मौलिक अधिकार हर समय सुरक्षित रहेंगे। कोई समझौता समाज या राजनीतिक व्यवस्था की गवाह के रूप में ही काम आएगा, लेकिन व्यक्ति को बाध्य नहीं कर सकता। इसका अर्थ है कि कोई भी व्यक्ति अपने विवाह संबंध को कभी भी तोड़ सकता है। कोई भी व्यक्ति किसी दूसरे से हुए किसी समझौते को भी कभी तोड़ सकता है, यदि उसमें मौलिक अधिकारों पर समझौता किया गया हो। मैं जानता हूं कि विषय बहुत जटिल और कठिन है, लेकिन आपके प्रश्नों का उत्तर देना मेरा दायित्व होगा।

4 टैक्स मुक्त समाज और आर्थिक समानता का मॉडल

नई व्यवस्था में हम सब प्रकार के टैक्स समाप्त कर देंगे। यदि आर्थिक असमानता बहुत अधिक बनी रहेगी, तो हम आम लोगों को सरकार से नगद सहायता भी देंगे। इसके बदले में जितने भी धन की आवश्यकता होगी, वह सारा धन कृत्रिम ऊर्जा से लिया जाएगा। कोई भी अन्य टैक्स नहीं लगाया जाएगा। आवागमन को इतना महंगा होने दिया जाएगा कि गांव-गांव के उद्योग अपने आप बढ़ने लगें। कृत्रिम ऊर्जा की खपत इस सीमा तक कम होने दी जाएगी कि हमारा पर्यावरण प्रदूषित न हो और हमें किसी प्रकार के डीजल-पेट्रोल के आयात की आवश्यकता न पड़े। श्रम का मूल्य उस सीमा तक बढ़ने दिया जाएगा, जिससे भारत में श्रम और बुद्धि के बीच की दूरी घट जाए। शिक्षा पर किया जाने वाला सारा बजट रोक दिया जाएगा। स्वास्थ्य पर भी सरकार कोई खर्च नहीं करेगी, क्योंकि गरीब लोगों का जीवन स्तर स्वयं इतना ऊंचा हो जाएगा कि वे शिक्षा और स्वास्थ्य का खर्च खुद संभाल सकेंगे। सरकार पर हमारी निर्भरता बहुत कम हो जाएगी। यदि आवश्यकता पड़ेगी, तो हम डीजल, पेट्रोल और बिजली का मूल्य ढाई गुना तक बढ़ा सकते हैं। लेकिन हम आर्थिक विषमता को अवश्य ही कम करेंगे। हम श्रम और बुद्धि के बीच के अंतर को कम करेंगे। हम शहर और गांव के अंतर को कम करेंगे, और इसका सबसे रामबाण इलाज है कृत्रिम ऊर्जा मूल्य वृद्धि।

5 नई व्यवस्था में सांप्रदायिकता का पूर्ण निषेध

हम नई व्यवस्था के अंतर्गत सांप्रदायिकता को पूरी तरह अमान्य कर देंगे। हम इस बात को अच्छी तरह समझते हैं कि दुनिया में धर्म के नाम पर सबसे अधिक हत्याएं हुई हैं और सबसे अधिक अपराध भी धर्म के नाम पर हुए हैं, जबकि धर्म को अपराध नियंत्रण में सहायक बताया जाता है। हम इसका कारण भी समझते हैं कि धर्म के आधार पर बनने वाले संगठन ही टकराव का कारण बनते हैं। हम नई व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति को एक कोड नंबर देंगे और वही कोड नंबर उसकी पहचान होगी। व्यक्तिगत आधार पर या सामाजिक आधार पर वह अपना कोई भी नाम रख सकता है, उसका कोई भी धर्म हो सकता है, लेकिन सरकारी आधार पर नाम के आधार पर कोई भेदभाव नहीं होगा। दूसरी बात यह कि हम किसी भी प्रकार का संगठन बनाने की स्वतंत्रता नहीं देंगे। आप संस्था बना सकते हैं, हम संस्थाओं को मान्यता देंगे। आप सरकार को सलाह दे सकते हैं, लेकिन संगठन के आधार पर मांग नहीं कर सकते। संगठन तो सिर्फ परिवार, गांव, जिला, प्रदेश और केंद्र के आधार पर ही बनाए जा सकते हैं। इस तरह हम पूरी व्यवस्था करेंगे कि सांप्रदायिकता के आधार पर समाज में किसी भी प्रकार का कोई टकराव न हो।

6 नई समाज व्यवस्था में जन्मना जाति का पूर्ण अंत

हम नई समाज व्यवस्था में जन्मना जाति को पूरी तरह समाप्त कर देंगे। राजनीतिक व्यवस्था जन्मना जाति को स्वीकार नहीं करेगी। कर्मणा जातियां बनेंगी, जो वर्तमान में भी बनी हुई हैं, उन्हें हम स्वीकार करेंगे। जनगणना में भी जन्मना जाति नहीं होगी। आरक्षण में भी किसी जन्मना जाति को नहीं माना जाएगा। हम सब प्रकार के आरक्षण समाप्त कर देंगे। हम व्यक्ति-व्यक्ति के बीच किसी प्रकार का भेदभाव नहीं करेंगे। सभी लोग अपनी योग्यता और क्षमता के अनुसार अपना कार्य चुनने के लिए स्वतंत्र होंगे। जातिवाद समाज के लिए बहुत घातक है और उसको तत्काल समाप्त करने की आवश्यकता है। हम नई व्यवस्था में समान नागरिक संहिता लागू करेंगे। हम किसी भी जन्मना जाति वाले संगठन को स्वीकृति देंगे ही नहीं। हम नई व्यवस्था में वर्ण व्यवस्था को स्वीकार करेंगे, लेकिन वर्ण योग्यता के अनुसार बनेंगे, जन्म के आधार पर नहीं। वर्ण व्यवस्था के लिए प्रत्येक व्यक्ति को एक परीक्षा पास करना आवश्यक होगा।

7 स्वतंत्र समाज और आत्मनियंत्रित नैतिक व्यवस्था

हम नई समाज व्यवस्था पर चर्चा कर रहे हैं। वर्तमान भारत में नैतिक पतन बहुत तेज गति से हुआ है। भौतिक उन्नति तेज गति से होने के बाद भी नैतिक पतन का बढ़ना एक चिंता का कारण है। हम लोगों ने इस मुद्दे पर शोध किया है और यह पाया है कि राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था में जितने अधिक कानून होते हैं, उतना ही आम लोगों का नैतिक पतन होता है। वर्तमान समय में लगभग 100% लोग झूठ बोलने को या तो मजबूरी मान रहे हैं या लाभदायक समझ रहे हैं। सेक्स के मामले में भी लगातार नैतिक पतन बढ़ता जा रहा है। अन्य मामलों में भी लगभग

यही स्थिति है और इन सबका कारण है समाज में नैतिक कानूनों का बढ़ना। साथ ही सरकार के भी अनावश्यक कानून नैतिक पतन को बढ़ा रहे हैं। हम नई व्यवस्था में सरकार के 98% कानून समाप्त कर देंगे। समाज भी परिवारों के आंतरिक मामलों में किसी प्रकार के नियम-कानून नहीं बना सकेगा। सेक्स के मामले में नियम-कानून बनाने की स्वतंत्रता परिवारों को होगी, समाज को नहीं। शराब, जुआ, वैश्यावृत्ति, तस्करी, ब्लैक जैसे हजारों कानून समाप्त कर दिए जाएंगे। समाज भी विशेष परिस्थिति में सिर्फ बहिष्कार कर सकता है, किसी को दंड नहीं दे सकता। इस तरह हम पूरी तरह आश्वस्त हैं कि समाज में नैतिक पतन को पूरी तरह रोका जा सकता है। हम नई व्यवस्था में इस तरह का बदलाव करेंगे। हम नैतिक उत्थान और भौतिक उन्नति को एक साथ संतुलित रूप से चलने की गारंटी देते हैं।

8 संविधान परिवर्तन से नई समाज व्यवस्था की शुरुआत

हम नई समाज व्यवस्था में यह बात साफ करेंगे कि हमारी पूरी राजनीतिक व्यवस्था संविधान से चलती है। तंत्र उस संविधान का संचालन करता है, उसका क्रियान्वयन करता है। यदि तंत्र दोषी होता है और संविधान ठीक है, तब तो हम समय-समय पर तंत्र को बदल सकते हैं। अन्यथा, यदि व्यवस्था में संविधान दोषी है, तो तंत्र को बदलने से व्यवस्था ठीक नहीं होगी। मैंने यह अनुभव किया है कि वर्तमान भारत में संविधान दोषी है, इसलिए तंत्र गलतियां कर रहा है। तंत्र और संविधान का संतुलन बिगड़ गया है। तंत्र को बार-बार बदलकर भी हम कोई अच्छे परिणाम नहीं ला सके हैं। इसलिए नई समाज व्यवस्था में हम एक संविधान सभा का गठन करेंगे। यह संविधान सभा वर्तमान संविधान में व्यापक संशोधन का प्रस्ताव करेगी और उस प्रस्ताव को संवैधानिक तरीके से लागू करने का प्रयास किया जाएगा। हम केवल तंत्र को दोषी मानकर इस व्यवस्था को ठीक नहीं कर सकते, क्योंकि दोष संविधान में है और उसके कारण तंत्र उद्दंड हुआ है। मैं अंतिम रूप से इस नतीजे तक पहुंच चुका हूं कि सारी बीमारी की जड़ संविधान में है और संविधान संशोधन से ही इस बीमारी का समाधान शुरू करना चाहिए।

9 न्यायालय से पहले सामाजिक सहभागिता आधारित न्याय

नई समाज व्यवस्था में न्यायपालिका का भी पूरी तरह विकेंद्रीकरण कर दिया जाएगा। अब तक न्याय करना सिर्फ न्यायालय की जिम्मेदारी रही है और न्याय बहुत देर से मिल रहा है, आधा-अधूरा मिल रहा है। हम इस कमजोरी को दूर करने के लिए न्यायपालिका का स्वरूप बदल रहे हैं। नई व्यवस्था में कोई भी व्यक्ति यदि अपराध करेगा, तो उसकी प्रारंभिक सुनवाई स्थानीय स्तर पर होगी। पांच लोग बैठकर उस मामले का निपटारा करेंगे। उसमें एक प्रतिनिधि पुलिस का होगा, एक प्रतिनिधि आरोपी का होगा, एक प्रतिनिधि पीड़ित का होगा, एक प्रतिनिधि पीड़ित की ग्राम सभा का होगा और एक प्रतिनिधि आरोपी की ग्राम सभा का होगा। इस तरह आरोपी का परिवार, पीड़ित का परिवार, दोनों ग्राम सभाएं और सरकार का प्रतिनिधि अर्थात पुलिस — ये पांच मिलकर जो निर्णय देंगे, वह निर्णय मान्य होगा। इन पांचों में से यदि किसी को कोई आपत्ति होगी, तब वह न्यायालय में अपील कर सकता है। इस तरह न्याय तत्काल होगा, विश्वसनीय होगा और नियम-कानून में ज्यादा नहीं उलझेगा। न्यायपालिका की भूमिका भी बहुत कम हो जाएगी। इस तरह हम न्याय को सुलभ बनाएंगे।

10 नई समाज व्यवस्था में बलात्कार की नई परिभाषा पर चर्चा

नई समाज व्यवस्था पर चर्चा। हम नई समाज व्यवस्था में बलात्कार को अलग तरह से परिभाषित करेंगे। बलात्कार हम तभी मानेंगे, जब उसमें बल प्रयोग हो या उसमें कोई गंभीर धोखाधड़ी हो। यदि बल प्रयोग करने वाले की मंशा बलात्कार की नहीं है, तब भी उसे बलात्कार नहीं माना जाएगा। मामूली छेड़छाड़ की घटनाओं को बलात्कार की श्रेणी से बाहर कर दिया जाएगा। सहमति से हुए सेक्स को किसी भी रूप में बलात्कार नहीं माना जाएगा। यदि कोई शादी का आश्वासन देकर शादी न करे, तब भी उसे बलात्कार नहीं माना जाएगा। उसे सिर्फ समझौते का उल्लंघन माना जाएगा। इस तरह वर्तमान समय में जो बलात्कार की घटनाएं दर्ज होती हैं, वे घटकर दो-चार प्रतिशत ही रह जाएंगी। बलात्कार से होने वाले दंड की तुलना में डकैती या हत्या के लिए अधिक गंभीर दंड बनाए जाएंगे। हम बलात्कार को हत्या या डकैती की तुलना में कम गंभीर अपराध समझेंगे। महिला सशक्तिकरण के नाम पर समाज का बंटवारा करने की योजनाओं को हम असफल करेंगे। इस तरह नई व्यवस्था में हम बलात्कार को गंभीर अपराध मानेंगे, लेकिन हत्या को उससे भी अधिक गंभीर अपराध मानेंगे।

11 नई समाज व्यवस्था और अपराध नियंत्रण की संवैधानिक गारंटी

नई समाज व्यवस्था पर चर्चा। हम एक नई समाज व्यवस्था का जो प्रारूप दे रहे हैं, वह अभी काल्पनिक है। जब वह यथार्थ बनेगा, तब युग परिवर्तन शुरू हो जाएगा। अर्थात हम कलयुग से सतयुग की तरफ बढ़ना शुरू कर देंगे। यह कार्य कब होगा, यह अभी संभावना के स्तर पर है। इस नई समाज व्यवस्था में आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, वैश्विक, प्राकृतिक — सब प्रकार की समस्याओं के समाधान का मार्ग खुलेगा। इसी समाधान के मार्ग में संवैधानिक समस्याएं भी हल होंगी। इन सबके समाधान की शुरुआत हम भारत से सोच रहे हैं और भारत

में भी अभी हम संवैधानिक समस्याओं के समाधान पर अधिक चर्चा कर रहे हैं। मैंने यह निष्कर्ष निकाला है कि संवैधानिक समस्याओं के समाधान के लिए भारत का एक संशोधित संविधान बनना चाहिए, जिसके आधारभूत पांच सिद्धांत होंगे। उन पांच सिद्धांतों में से एक सिद्धांत पर हम पिछले दिनों से चर्चा करते रहे हैं कि उन पांच सिद्धांतों में एक सिद्धांत समान नागरिक संहिता को रखा गया है। उस पर 5 दिनों तक चर्चा हुई है। इन पांच आधारभूत सिद्धांतों में एक सिद्धांत है — अपराध नियंत्रण की गारंटी। अब हम आज से चार-पांच दिनों तक अपराध नियंत्रण की गारंटी पर चर्चा करेंगे। स्पष्ट है कि अपराध नियंत्रण की गारंटी भारत सरकार की होगी, क्योंकि समाज ने उसके लिए जो एक अलग विंग बनाया है, उसे ही हम सरकार कहते हैं। अर्थात अपराध नियंत्रण की जिम्मेदारी सरकार नामक विंग की ही मानी जाएगी। सरकार के दायित्व क्या होंगे, उसकी शक्ति क्या होगी और उसकी सीमाएं क्या होंगी — ये दोनों बातें संविधान में लिखी रहेंगी। अपराध नियंत्रण के लिए सरकार की जिम्मेदारी कितनी होगी, यह बात भी संविधान में स्पष्ट होगी।

साथियों के कलम से

संस्कृति का युद्ध : एक शताब्दी के षड्यंत्र का पर्दाफाश

षड्यंत्र की पहचान ही उसका सबसे बड़ा प्रतिकार है।

(ज्ञानेन्द्र आर्य)

1 साम्यवाद : परंपरा-विरोध की राजनीति और दासता का षड्यंत्र

भारतीय सामाजिक दर्शन के आलोक में एक विवेचना

साम्यवाद को समझने के लिए उसके सिद्धांतों की पुस्तकें पढ़ना पर्याप्त नहीं है। उसे समझने के लिए यह देखना होगा कि वह समाज के साथ व्यवहार में कैसे प्रकट होता है। जब हम साम्यवादी आंदोलनों और विचारकों के आचरण का गहन अवलोकन करते हैं, तो एक तथ्य बड़ी स्पष्टता से उभरता है — उनके विरोध का केंद्र वे सामाजिक परंपराएँ और मूल्य होते हैं जिनके आधार पर समाज सदियों से जीवन जीता आया है। धर्म, परिवार, विवाह-संस्था, स्त्री-पुरुष की भूमिकाएँ, सांस्कृतिक अनुष्ठान — इन सबका खुलकर और मुखरता से विरोध करना साम्यवाद की पहचान बन गई है। किंतु यहाँ एक गहरा विरोधाभास भी है। जिन परंपराओं और मान्यताओं का साम्यवादी खुलकर विरोध करते हैं, वे अपने निजी जीवन में प्रायः उन्हीं का अनुसरण करते पाए जाते हैं। परिवार बनाते हैं, संतान को अपनी विचारधारा से दीक्षित करते हैं, सांस्कृतिक पहचान को बचाए रखते हैं — फिर भी सार्वजनिक मंच पर उनका विरोध जारी रहता है। यह विरोधाभास आकस्मिक नहीं है। यह एक सुनियोजित रणनीति है।

शर्म, भ्रम और भय — दासता का त्रिकोण

मैंने अपनी पुस्तक आशा खोती मानवता में विस्तार से विवेचना की है कि किसी व्यक्ति को उसके संसाधनों और अधिकारों से वंचित करने के लिए तीन ही अस्त्र पर्याप्त हैं शर्म, भ्रम और भय। जो व्यक्ति इन तीनों से ग्रस्त हो जाता है, वह स्वयं ही अपने संसाधन, अपने अधिकार और अंततः अपनी स्वतंत्र वैचारिकी को समर्पित कर देता है। उसे बाहर से जंजीरें पहनाने की आवश्यकता नहीं रहती। साम्यवाद की परंपरा-विरोधी रणनीति इसी सूत्र पर काम करती है। जब किसी समाज की सांस्कृतिक जड़ों को बार-बार प्रश्नों के घेरे में लाया जाता है, जब उसकी मान्यताओं को पिछड़ेपन का प्रतीक घोषित किया जाता है, तो उस समाज का व्यक्ति धीरे-धीरे अपनी ही परंपराओं से शर्मिंदा होने लगता है। जब परिभाषाएँ बदली जाती हैं, इतिहास को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत किया जाता है, तो भ्रम की स्थिति उत्पन्न होती है। और जब यह भ्रम गहरा हो जाता है, तो उसमें से भय अपने-आप जन्म लेता है — अपनी परंपराओं को थामे रहने का भय, समाज में अप्रासंगिक हो जाने का भय। यह तीनों मिलकर जिस व्यक्ति या समाज को जकड़ लेते हैं, वह बिना किसी बाहरी बल के एक अदृश्य दासता में जीने लगता है।

साम्यवाद का अंतिम लक्ष्य एक नियंत्रणकर्ता, समूची मानवजाति

साम्यवाद की परंपरा-विरोधिता को यदि केवल एक दार्शनिक असहमति मानकर चला जाए, तो उसके वास्तविक स्वभाव को समझना कठिन हो जाएगा। सच यह है कि इस विरोध के पीछे एक सुस्पष्ट राजनीतिक लक्ष्य है — समूची मानव जाति को एक केंद्रीय नियंत्रणकर्ता के अधीन लाना। मार्क्स ने मनुष्य की जो कल्पना की, उसमें उसकी मानसिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक चेतना के लिए कोई स्थान नहीं था। उसने मनुष्य को एक आर्थिक इकाई के रूप में परिभाषित किया — उत्पादन और उपभोग के बीच झूलता एक यंत्र। जब मनुष्य की आत्मा, उसकी परंपराएँ, उसके मूल्य और उसकी सांस्कृतिक अस्मिता — ये सब अप्रासंगिक घोषित कर दी जाती हैं, तो शेष बचता है केवल एक ऐसा जीव जिसे किसी बाहरी शक्ति के निर्देश पर चलना ही होगा। साम्यवाद उस बाहरी शक्ति को 'राज्य' कहता है। वर्तमान साम्यवादी विमर्श में राज्य को समाज के संरक्षक और अभिभावक की भूमिका में प्रतिष्ठित किया जाता है। राज्य ही तय करेगा कि समाज के लिए क्या उचित है, क्या अनुचित है; क्या मान्य है, क्या वर्जित है। इस प्रकार राज्य समाज का नियामक नहीं, बल्कि उसका स्वामी बन जाता है।

भारतीय परंपरा में संरक्षक की अवधारणा : ब्राह्मण

और राज्य का भेद

भारतीय सामाजिक दर्शन में भी एक संरक्षक की अवधारणा रही है। ब्राह्मण को समाज का मार्गदर्शक और वैचारिक संरक्षक माना गया। किंतु यहाँ साम्यवादी राज्य और भारतीय ब्राह्मण की भूमिका के बीच एक मौलिक और निर्णायक अंतर है — ब्राह्मण एक वैचारिक इकाई है, संगठनात्मक नहीं। वह अपने सुझाव, अपनी व्याख्या और अपना मार्गदर्शन समाज के सामने रखता है। समाज उसे स्वीकार करे या न करे — यह समाज का विवेक तय करता है। ब्राह्मण के पास अपनी बात मनवाने के लिए कोई दंड-शक्ति नहीं होती। उसकी भूमिका बाध्यकारी नहीं, सुझावात्मक होती है। इसके विपरीत, साम्यवादी राज्य एक संगठनात्मक इकाई है। राज्य का सबसे आवश्यक तत्त्व ही संप्रभुता है — अर्थात वह शक्ति जिसके आधार पर उसके आदेश को मानना शेष समाज के लिए बाध्यकारी हो जाता है। जब यही राज्य समाज का 'संरक्षक' बन जाता है, तो संरक्षण एक अनुग्रह नहीं, एक नियंत्रण बन जाता है।

समाज की वैचारिकी का अपमान ही दासता की पहली पहचान

भारतीय सामाजिक दर्शन में समाज ही संप्रभुता का वाहक रहा है। यही कारण है कि यहाँ परंपराएँ थोपी नहीं गईं— वे समाज की सामूहिक जीवन-यात्रा से उद्भूत हुईं और समाज ने ही उन्हें समय के साथ परिष्कृत किया। यह एक जीवंत और स्वशासी व्यवस्था थी। साम्यवाद इसी स्वशासिता को नष्ट करता है। जब राज्य को समाज का अभिभावक घोषित कर दिया जाता है, तो समाज के प्रत्येक व्यक्ति की अपनी वैचारिकी— उसका विवेक, उसकी परंपरागत समझ, उसका सांस्कृतिक ज्ञान— सब निरर्थक हो जाता है। उसे केवल राज्य के निर्देशों का पालन करना है। और यही दासता की पहली और सबसे स्पष्ट पहचान है— जब किसी व्यक्ति की अपनी वैचारिकी का कोई मूल्य न माना जाए। दास वह नहीं जिसके हाथ बंधे हों; दास वह है जिसे सोचने का अधिकार न हो, या जो अपनी सोच पर स्वयं ही भरोसा करना भूल गया हो।

उपसंहार- विरोध एक रणनीति है, असहमति नहीं

साम्यवाद का परंपरा-विरोध इसलिए नहीं है कि वे परंपराएँ वास्तव में हानिकारक हैं। यह विरोध एक सुनिश्चित रणनीति है— समाज को उसकी जड़ों से काटने की, उसे शर्म, भ्रम और भय में डुबोने की, और उस रिक्तता में एक नए स्वामी को प्रतिष्ठित करने की। वह स्वामी है— साम्यवादी राज्य। भारतीय समाज को इस षड्यंत्र को समझना होगा। उसे अपनी परंपराओं का अंध-समर्थक नहीं बनना है— परंपराओं की समालोचना होनी चाहिए, सुधार होने चाहिए। किंतु यह समालोचना समाज के अंदर से, समाज की अपनी वैचारिकी से होनी चाहिए— किसी बाहरी नियंत्रणकर्ता के एजेंडे से नहीं। जिस दिन समाज ने अपनी वैचारिकी पर अपना भरोसा खो दिया, उस दिन उसकी स्वतंत्रता का क्षरण आरंभ हो जाता है।

2 सांस्कृतिक मार्क्सवाद का षड्यंत्र वे विचारक और पुस्तकें जिन्होंने सभ्यता को निशाना बनाया

साम्यवाद का समाज-विरोधी चेहरा किसी एक व्यक्ति की सनक नहीं है, किसी एक देश की राजनीतिक परिस्थिति का उत्पाद नहीं है। यह एक सुनियोजित, सुदीर्घ और सुसंगठित षड्यंत्र है — जो एक शताब्दी से अधिक समय में, अनेक विचारकों के हाथों, अनेक पुस्तकों के माध्यम से धीरे-धीरे रचा गया। इसे समझने के लिए उन नामों और पुस्तकों को जानना आवश्यक है जिनसे यह षड्यंत्र चरणबद्ध रूप से विकसित हुआ।

पहला प्रश्न— क्रांति क्यों नहीं हुई?

कार्ल मार्क्स ने 1848 में कम्युनिस्ट घोषणापत्र और 1867 में दास कैपिटल के माध्यम से यह घोषणा की थी कि पूँजीवाद का विनाश अनिवार्य है। मज़दूर वर्ग एक दिन उठेगा और व्यवस्था को उलट देगा। किंतु प्रथम विश्वयुद्ध में वह मज़दूर वर्ग— जिससे क्रांति की उम्मीद थी— अपनी-अपनी सरकारों के लिए लड़ा और मरा। क्रांति नहीं हुई। यह साम्यवादी विचारकों के लिए सबसे बड़ा धक्का था। 1920 में एंटोनियो ग्राम्शी और फ्रैंकफर्ट स्कूल के विचारकों ने इस प्रश्न पर गहन मंथन किया— आखिर क्यों?

उत्तर मिला— संस्कृति।

परिवार, धर्म, देशप्रेम, सामाजिक परंपराएँ — ये वे बंधन हैं जो मनुष्य को क्रांति से रोकते हैं। जब तक ये जीवित हैं, साम्यवादी राज्य की स्थापना असंभव है। इसलिए पहले इन्हें नष्ट करो। यहीं से आरंभ हुआ सांस्कृतिक मार्क्सवाद का षड्यंत्र।

चरण एक— जॉर्ज लुकाच और सांस्कृतिक आतंक (1919–1923)

हंगरी के मार्क्सवादी विचारक *जॉर्ज लुकाच* इस षड्यंत्र के पहले व्यावहारिक प्रयोगकर्ता थे। 1919 में जब हंगरी में बोल्शेविक सरकार बनी, तो लुकाच संस्कृति के उप-आयुक्त बने। उन्होंने तत्काल स्कूलों में एक विशेष यौन-शिक्षा कार्यक्रम आरंभ किया — जिसका उद्देश्य शिक्षा नहीं, बल्कि बच्चों के मन में परिवार, विवाह और धर्म के प्रति अविश्वास उत्पन्न करना था। लुकाच का तर्क स्पष्ट था — जो परिवार स्थिर है, वह समाज क्रांतिकारी नहीं बनता। 1923 में उनकी पुस्तक इतिहास और वर्ग चेतना प्रकाशित हुई जिसने आगे चलकर फ्रैंकफर्ट स्कूल की वैचारिक नींव तैयार की। लुकाच ने सांस्कृतिक षड्यंत्र के लिए जो शब्द प्रयोग किया वह था— सांस्कृतिक आतंकवाद।

चरण दो— एंटोनियो ग्राम्शी और संस्थाओं में घुसपैठ (1929–1935)

इटली के एंटोनियो ग्राम्शी इस षड्यंत्र के सबसे प्रभावशाली वास्तुकार थे। मुसोलिनी की जेल में बंद रहते हुए उन्होंने 33 नोटबुक और 3000 से अधिक पृष्ठ लिखे

— जो बाद में जेल की डायरियाँ के नाम से प्रकाशित हुए। ग्राम्शी ने एक मौलिक अवधारणा दी— सांस्कृतिक वर्चस्व उनका कहना था कि शासक वर्ग केवल बल से नहीं, बल्कि विचारों और संस्कृति के माध्यम से अपनी सत्ता बनाए रखता है। इसलिए क्रांति के लिए पहले सांस्कृतिक वर्चस्व छीनना होगा। इसके लिए उन्होंने संस्थाओं में लम्बे मार्च की रणनीति सुझाई विश्वविद्यालय, मीडिया, न्यायपालिका, शिक्षा और परिवार जैसी संस्थाओं में धीरे-धीरे घुसपैठ करो। बाहर से क्रांति नहीं— भीतर से विघटन।

ग्राम्शी ने लिखा था— समाजवाद पहले संस्कृति जीतेगा, तब सत्ता।

यही वह सूत्र है जिसके आधार पर पिछले सौ वर्षों में भारत के विश्वविद्यालयों, मीडिया और फिल्म उद्योग में वामपंथी वैचारिक पैठ बनाई गई। चरण तीन— फ्रैंकफर्ट स्कूल और आलोचनात्मक सिद्धांत (1923–1950) 1923 में जर्मनी के फ्रैंकफर्ट विश्वविद्यालय में सामाजिक अनुसंधान संस्थान की स्थापना हुई— जो इतिहास में फ्रैंकफर्ट स्कूल के नाम से जाना गया। इसके प्रमुख विचारक थे मैक्स होर्खाइमर और थियोडोर अडोर्नो। होर्खाइमर और अडोर्नो ने 1947 में प्रबोधन का द्वंद्ववाद लिखी। इसमें पश्चिमी ज्ञान-परंपरा, तर्क और प्रबोधन को ही शोषण का मूल स्रोत घोषित किया गया। उनकी आलोचनात्मक सिद्धांत का सार यह था— हर परंपरा संदिग्ध है, हर मूल्य प्रश्नांकित है, हर संस्था शोषण का उपकरण है। अडोर्नो ने 1950 में सत्तावादी व्यक्तित्व लिखी— जो इस षड्यंत्र की सबसे चालाक पुस्तक है। इसमें यह स्थापित करने का प्रयास किया गया कि जो व्यक्ति परंपरावादी है, धर्म मानता है, परिवार को महत्त्व देता है— वह मानसिक रूप से अधिनायकवादी है। अर्थात परंपरा मानना एक मनोरोग है। यह एक अत्यंत सुनियोजित चाल थी— जिससे परंपरा के समर्थकों को वैचारिक रूप से रक्षात्मक स्थिति में धकेल दिया गया।

चरण चार — हर्बर्ट मार्क्युज़ और यौन क्रांति (1955–1965)

फ्रैंकफर्ट स्कूल के सबसे प्रभावशाली विचारक हर्बर्ट मार्क्युज़ को 1960 के दशक के छात्र आंदोलन का वैचारिक जनक माना जाता है। 1955 में उन्होंने इरोस और सभ्यता लिखी जिसमें मार्क्स और फ्रायड का संश्लेषण किया। उनका केंद्रीय तर्क था —सभ्यता ही दमन है। परिवार, विवाह, नैतिकता— ये सब मनुष्य की स्वाभाविक वृत्तियों को दबाते हैं। मुक्ति के लिए इन सबसे मुक्त होना होगा। 1964 में एक-आयामी मनुष्य में उन्होंने कहा कि उपभोक्तावादी समाज ने मनुष्य को एकआयामी बना दिया है— उसे केवल उत्पादन और उपभोग की मशीन। किंतु उनकी सबसे खतरनाक रचना थी 1965 का निबंध— दमनकारी सहिष्णुता। इसमें उन्होंने खुलकर घोषणा की— दक्षिणपंथी और परंपरावादी विचारों के प्रति असहिष्णुता न्यायसंगत है। वामपंथी विचारों को पूर्ण स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। यह आज के कैंसल कल्चर, द्वेषपूर्ण भाषण कानूनों और एक पक्ष की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की वैचारिक जड़ है। मार्क्युज़ ने ग्राम्शी के नए सर्वहारा में महिलाओं, अल्पसंख्यकों और अपराधियों के साथ समलैंगिकों को भी जोड़ा— और इस प्रकार जाति, लिंग और यौन पहचान की राजनीति को क्रांति का नया आधार बनाया।

चरण पाँच — साउल अलिंस्की और मैदानी युद्धनीति (1971)

अमेरिकी विचारक साउल अलिंस्की ने 1971 में कट्टरपंथियों के लिए नियम लिखी— जो ग्राम्शी के सिद्धांत का व्यावहारिक युद्ध-मैनुअल है। अलिंस्की ने खुलकर लिखा—संगठन का पहला कदम विघटन है। पहले समाज की पुरानी शिकायतें कुरेदो, शत्रुता को हवा दो, विवाद खड़े करो— तब लोग उठेंगे। उनके 13 नियमों में सबसे प्रसिद्ध है— लक्ष्य चुनो, उसे जमाओ, व्यक्तिगत बनाओ, ध्रुवीकृत करो। भारत के संदर्भ में यह स्पष्ट दिखता है— ब्राह्मण, मनुवाद, आरएसएस— ये अलिंस्की की रणनीति के अनुसार फ्रीज़ किए गए लक्ष्य हैं। एक बार लक्ष्य तय हो जाए तो पूरे समूह को उसके विरुद्ध एकजुट करना सरल हो जाता है।

भारत में इस षड्यंत्र का प्रभाव

यह सब केवल पश्चिम की कहानी नहीं है। भारत में भी यही क्रम दिखता है— लुकाच की यौन-शिक्षा— स्कूली पाठ्यक्रम में पारिवारिक मूल्यों के स्थान पर व्यक्तिवादी और आधुनिक यौन-अवधारणाओं का समावेश। ग्राम्शी का संस्थाओं में लम्बा मार्च— दशकों तक विश्वविद्यालयों, मीडिया और फिल्म उद्योग में वामपंथी वैचारिक वर्चस्व। अडोर्नो की परंपरा = मनोरोग— हिंदू परंपराओं के पालनकर्ता को कट्टर,सांप्रदायिक,असहिष्णु घोषित करना। मार्क्युज़ का नया सर्वहारा— जाति, लिंग और धर्म की पहचान-राजनीति को क्रांति का आधार बनाना। अलिंस्की की मैदानी युद्धनीति— एक खलनायक तय करो और समाज को ध्रुवीकृत करो। जैसा कि त्रिभुवन सिंह जी इसे इन्फॉर्मेशन टेररिज्म कहते हैं— यह बौद्धिक प्रदूषण तीन पीढ़ियों से हमारे समाज में फैलाया जा रहा है।

उपसंहार— पहचान ही प्रतिकार है

मेरी पुस्तक आशा खोटी मानवता में मैंने लिखा है — किसी को गुलाम बनाने के लिए तीन ही अस्त्र चाहिए— शर्म, भ्रम और भय। यही तीनों इस पूरे षड्यंत्र के हथियार हैं। लुकाच ने परिवार के प्रति शर्म उत्पन्न की। होर्खाइमर और अडोर्नो ने परंपराओं के प्रति भ्रम फैलाया। मार्क्युज़ ने विरोधी विचार रखने वालों में भय उत्पन्न किया। किंतु इस षड्यंत्र का प्रतिकार असंभव नहीं है। बजरंग मुनि जी के शब्दों में— विपरीत विचारधाराओं के साथ बैठकर समयबद्ध, विषयबद्ध विचार-मंथन— यही एकमात्र मार्ग

है। जिस दिन समाज इस षड्यंत्र को नाम से पहचानने लगेगा— उसी दिन से उसका प्रतिकार आरंभ होगा।

षड्यंत्र की पहचान ही उसका सबसे बड़ा प्रतिकार है।

3 साम्यवादी कौन है— पहचान कैसे करें? बजरंग मुनि जी के सप्त सिद्धांतों के आलोक में

साम्यवाद की जड़ें हम समझ चुके हैं। मार्क्स से ग्राम्शी तक, लुकाच से मार्क्युज़ तक — यह एक सुनियोजित षड्यंत्र है जो एक शताब्दी में धीरे-धीरे रचा गया। किंतु सबसे कठिन और सबसे आवश्यक प्रश्न अब भी शेष है — इन्हें पहचाना कैसे जाए?

यह प्रश्न इसलिए कठिन है क्योंकि आधुनिक सांस्कृतिक मार्क्सवादी खुले मैदान में नहीं लड़ते। वे आपके आसपास हैं— आपकी भाषा बोलते हैं, आपकी हाँ में हाँ मिलाते हैं, आपकी टिप्पणी पर कोई प्रतिक्रिया नहीं देते। प्रतिकूलता चाहे जितनी भी हो— वे चुप रहते हैं। यह चुप्पी कमज़ोरी नहीं— रणनीति है। ग्राम्शी ने इसी को संस्थाओं में लम्बा मार्च कहा था— भीतर से, धीरे-धीरे, बिना शोर के। तो फिर पहचान कैसे हो?

पहचान का एकमात्र विश्वसनीय आधार — सिद्धांत नहीं, आचरण

साम्यवादी को उसके कथन से नहीं, उसके कार्य और आचरण से पहचाना जा सकता है। और इसके लिए सबसे विश्वसनीय कसौटी है— बजरंग मुनि जी के सप्त सिद्धांत। मेरी पुस्तक समाज सर्वोच्च के अंतिम अध्याय में मैंने इन सात सिद्धांतों पर विस्तार से लिखा है। ये सिद्धांत व्यक्ति की असीम स्वतंत्रता और सहजीवन की अनिवार्यता के लिए आवश्यक आधार हैं। जो इन सातों के विपरीत आचरण करे— वह साम्यवादी विचारधारा का वाहक है। आइए एक-एक सिद्धांत के आलोक में देखें —

1. अहिंसा और सत्य — इनके विपरीत जो करे

सहजीवन का आधार अहिंसा और सत्य है। सत्य विश्वास का आधार है, अहिंसा संबंधों का। जो व्यक्ति या संगठन -

- अपने लक्ष्य के लिए झूठ को हथियार बनाए
- विरोधी को हिंसा की भाषा से चुप कराए
- बड़े उद्देश्य के नाम पर छोटे झूठों को उचित ठहराए — वह इस सिद्धांत का उल्लंघनकर्ता है।

अलिंस्की ने कट्टरपंथियों के लिए नियम में खुलकर लिखा — साधन को साध्य उचित ठहराता है। यही सत्य और अहिंसा का सबसे बड़ा शत्रु है।

2. सत्ता का अकेन्द्रीकरण— इनके विपरीत जो करे

लोक स्वराज का आधार यह है कि निर्णय नीचे से ऊपर जाएँ — शक्ति मूल इकाइयों में निहित हो। जो व्यक्ति या संगठन

- सत्ता को एक केंद्र में संकेन्द्रित करने की वकालत करे
- राज्य को समाज का अभिभावक घोषित करे
- स्थानीय निर्णय-शक्ति को कमज़ोर करे
- हम ही जानते हैं तुम्हारे लिए क्या सही है— यह भाव रखे — वह साम्यवादी षड्यंत्र का अंग है। मार्क्युज़ का पूरा दर्शन इसी पर टिका था — व्यक्ति की स्वतंत्र वैचारिकी को नकारो, राज्य को संरक्षक बनाओ।

3. वर्ग समन्वय — इनके विपरीत जो करे

विचारक, व्यवस्थापक, उत्पादक और श्रमिक — ये सब पूरक हैं, विरोधी नहीं। जो व्यक्ति या संगठन —

- समाज में वर्ग-शत्रुता को हवा दे
- ब्राह्मण बनाम दलित, पूँजीपति बनाम मज़दूर— ऐसे ध्रुवीकरण को बढ़ावा दे
- समन्वय की बजाय संघर्ष को स्थायी बनाए रखे
- हर समस्या का समाधान टकराव में खोजे

— वह मार्क्सवादी वर्ग-संघर्ष के सिद्धांत का व्यावहारिक संवाहक है। यही अलिंस्की का नियम 13 है— लक्ष्य चुनो, ध्रुवीकृत करो।

4. श्रम के साथ न्याय— इनके विपरीत जो करे

हर श्रम को सम्मान और न्याय— यही आर्थिक न्याय का वास्तविक आधार है। यहाँ एक गहरा विरोधाभास देखिए —

साम्यवाद श्रमिक के नाम पर खड़ा होता है, किंतु व्यवहार में —

- सस्ती कृत्रिम ऊर्जा से श्रम को अप्रासंगिक बनाता है
- शिक्षित बेरोजगारी का शोर मचाता है, किंतु उसका समाधान राज्य-नियंत्रण में खोजता है
- श्रमिक को संगठन का बंधक बनाता है — उसकी व्यक्तिगत शक्ति संगठन के पास चली जाती है जो श्रम की बात करे किंतु श्रमिक को *राज्य या संगठन का मोहरा* बनाए — वह श्रम का शत्रु है, मित्र नहीं।

5. सामाजिक व्यवस्थाओं की पुनर्स्थापना— इनके विपरीत जो करे

परिवार, ग्रामसभा और स्थानीय तंत्र— इन्हें पुनर्जीवित करना आवश्यक है। राज्य इनका स्थान नहीं ले सकता। जो व्यक्ति या संगठ —

- परिवार को पितृसत्ता कहकर तोड़े
- ग्राम और स्थानीय व्यवस्था को पिछड़ापन बताए
- हर सामाजिक समस्या का समाधान राज्य के हस्तक्षेप में खोजे
- सामाजिक इकाइयों को कमज़ोर करके व्यक्ति को राज्य के सामने अकेला खड़ा करे — वह ग्राम्शी की उसी रणनीति पर चल रहा है जो सौ वर्ष पहले रची गई थी। लुकाच ने 1919 में यही किया था— बच्चों को परिवार के विरुद्ध शिक्षित करो।

6. राज्य-संरक्षित नहीं, राज्य-नियंत्रित अर्थव्यवस्था — इनके विपरीत जो करे

अर्थव्यवस्था समाज के हाथ में हो— राज्य केवल सुरक्षा दे, नियंत्रण नहीं।

जो व्यक्ति या संगठन—

- राज्य के अधिकाधिक हस्तक्षेप को न्यायसंगत ठहराए

- सरकार दे, सरकार बाँटे — इस निर्भरता को बढ़ावा दे
- निजी उद्यम और स्वतंत्र अर्थव्यवस्था को शोषण घोषित करे
- समाज की आर्थिक स्वायत्तता को नष्ट करके उसे राज्य का मुँहताज बनाए — वह साम्यवादी आर्थिक नियंत्रण की दिशा में काम कर रहा है।

7. योग्यता को प्रतिस्पर्धा की स्वतंत्रता— इनके विपरीत जो करे

योग्यता को पूर्ण अवसर मिले — कृत्रिम बाधाएँ समाप्त हों। जो व्यक्ति या संगठन —
- योग्यता को विशेषाधिकार कहकर अस्वीकार करे
- मेधा और परिश्रम को नकारकर केवल समूह-पहचान को आधार बनाए
- कृत्रिम समानता के नाम पर स्वाभाविक प्रतिस्पर्धा को नष्ट करे
- किसी एक विचारधारा को सही और शेष सबको दमनकारी घोषित करे — वह मार्क्युज़ की दमनकारी सहिष्णुता का व्यावहारिक रूप है।

संगठन— साम्यवाद की सबसे बड़ी शक्ति और सबसे बड़ा छद्म

बजरंग मुनि जी ने संगठन की एक मौलिक परिभाषा दी है- संगठन कमज़ोर लोग बनाते हैं — मज़बूतों से अपनी सुरक्षा के लिए।
संस्था मज़बूत लोग बनाते हैं — कमज़ोरों की मदद के लिए।

साम्यवादी संगठन इसी सिद्धांत का दुरुपयोग करता है। वह कमज़ोरों की सुरक्षा के नाम पर बनता है — किंतु धीरे-धीरे उन्हीं का शोषण करने लगता है। संगठन में जुड़े लोग अपनी व्यक्तिगत शक्ति और अधिकार संगठन को सौंप देते हैं। फिर वही शक्ति संगठन के अवसरवादी नेताओं के हाथ में केंद्रित हो जाती है। विचारक एरिक हॉफर ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक सच्चा विश्वासी जन-आंदोलनों की प्रकृति पर विचार में इसे स्पष्ट रेखांकित किया है— शक्ति की भूख संगठन में धूर्तों का वर्चस्व स्थापित कर देती है। और ये धूर्त — जो संगठन मज़बूतों से रक्षा के लिए बनाया था — मज़बूतों के साथ मिलकर कमज़ोरों का शोषण करने लगते हैं। यही साम्यवाद का वास्तविक चेहरा है।

व्यावहारिक पहचान— सात संकेत

उपरोक्त सात सिद्धांतों के आधार पर पहचान के सात व्यावहारिक संकेत —

1. जो व्यक्ति समन्वय की जगह संघर्ष की भाषा बोले— हर विषय में हम बनाम वे का ढाँचा खड़ा करे।
2. जो परिवार, धर्म और परंपरा को निरंतर प्रश्नांकित करे किंतु उनका कोई व्यावहारिक विकल्प न दे।
3. जो राज्य के विस्तार को हमेशा न्यायसंगत ठहराए और सामाजिक स्वायत्तता को घटाने की वकालत करे।
4. जो योग्यता और परिश्रम को विशेषाधिकार कहे और समूह-पहचान को हर समस्या का उत्तर बताए।
5. जो झूठ को बड़े उद्देश्य के नाम पर उचित ठहराए— साधन की शुचिता को अप्रासंगिक माने।
6. जो विरोधी विचार को दबाने के लिए संस्थागत शक्ति का उपयोग करे— खुली बहस से बचे।
7. जो किसी संगठन के प्रति अंध-निष्ठा रखे और उस संगठन की आलोचना को व्यक्तिगत शत्रुता माने।

उपसंहार— पहचान ही प्रतिकार है

साम्यवादी को उसके लाल झंडे से नहीं पहचाना जाता। उसे पहचाना जाता है उसके आचरण से, उसकी भाषा से, उसके संगठन से और उन सात सिद्धांतों के प्रति उसके व्यवहार से जो एक स्वस्थ समाज की नींव हैं। जब कोई सत्य की जगह छल रखे, समन्वय की जगह संघर्ष रखे, समाज की जगह राज्य रखे और व्यक्ति की स्वतंत्रता की जगह संगठन की अधीनता रखे— तब समझिए कि यह विचारधारा वही है जो एक शताब्दी से मानवता की जड़ें काट रही है।

षड्यंत्र की पहचान ही उसका सबसे बड़ा प्रतिकार है।

गतांक से आगे ...

जीवन पथ

(**पिछले अंक 488 में हमने पढ़ा कि प्रोफेसर श्रीवास्तव अपने घर में बैठ व्यवस्था के सिद्धांतों पर चिंतन कर रहे हैं। अब आगे ...**)

मेरे विचार से भारत के संविधान की पठनीय विषय-वस्तु में वे सब गुण हैं जो एक लोकतन्त्रीय राज्य की विशुद्ध राजनीतिक व्यवस्था में होने चाहिए। इसमें निहित विषय-वस्तु की अवहेलना करना बडा दुष्कर कार्य है। इसकी भाषा में जटिलता भी है और स्वीकार करने योग्य तथ्य भी। लेकिन यह एक कुटिल राजनीतिज्ञ की तरह अपने अस्तित्व की सुरक्षा का ध्यान रखते हुए जनता के हित की कामना करता है। इसकी विषय-वस्तु में भयंकर क्रूरता है। क्योंकि यह समाज को राज्य में निहित समझता है। लेकिन अपने अस्तित्व के पोषक (समाज) के बीच यह स्वयं को बहुत पिलपिले रूप में प्रस्तुत करता है। भारत का संविधान राजनीतिक भाषाविदों की उच्चाकांक्षा का उत्कृष्ट प्रमाण है, क्योंकि यह राजनेताओं को समाज पर शासन करने की छूट देता है।

मैने यह तथ्य विश्लेषित करने का प्रयास किया कि यह समाज में परस्पर स्वतन्त्रता, समानता, निरपेक्षता, सहिष्णुता, न्याय, सुरक्षा, अवसर की समानता की स्थापना करने हेतु नियमबद्ध है। लेकिन ऐसा कभी नहीं हो सका,

और यहाँ तक कि संविधान की इस विफलता का कारण कई बार तो समाज को बता दिया जाता है कि समाज दोषी है। मैने जब इस रहस्य को जानने का प्रयास किया तो मुझे ऐसा होने के बडे सरल कारण की जानकारी हुई। यह जनता के विरूद्ध कोई षडयन्त्र नहीं है। क्योंकि इसे कथित तौर पर जनता द्वारा निर्वाचित संविधान सभा ने जनता का प्रतिनिधित्व करते हुए निर्मित किया है। यह तो केवल विषय-वस्तु के स्वभावगत गुण की स्थापना का प्रश्न है। भारत के संविधान की निष्फलता का कारण एक शब्द समूह के दो अर्थो में निहित है। हम जानते हैं, भारत में अंग्रेजो से शासन मुक्ति के बाद लोकतन्त्रीय व्यवस्था की स्थापना हुई। भाषाशास्त्र के ज्ञाता लोकतन्त्र शब्द का चाहे जो भी अर्थ समझें। लेकिन व्यवस्था के सन्दर्भ के अनुसार परिणाम प्राप्त करने एवं इसके ढाँचे को समझने के लिए इसके दो अर्थ स्वीकार किए जाते हैं। इसका मूल अर्थ समाजशास्त्रीय भाषा में प्रकट होता है जो इसे जनता की व्यवस्था के रूप में स्वीकार करता है और इसका दूसरा व छदम अर्थ जो राजनेताओं की भाषा के अनुसार है वह है जनता और व्यवस्था। .....जनता की व्यवस्था अर्थात लोक (जनता) जिसे अपने लिए निर्मित करता है, अपने लिए स्वीकार करता है तो भला वह उसके प्रति जवाबदेही से कैसे इंकार कर सकता है? यद्यपि लोक, स्वेच्छा से या कारणवश दायित्व बोध को नकार भी सकता है, लेकिन उसी के द्वारा स्थापित की गयी व्यवस्था की नियमावली उन्हीं लोगों को दायित्व निर्वहन के लिए प्रतिबद्ध न कर सके, तो उसे व्यवस्था कैसे कहा जा सकता है?

यदि कोई लोकव्यवस्था ऐसा परिणाम नहीं दे सकती है तो स्वतन्त्रता के मूल-भूत आदर्श को समझते हुए जीवन-निर्वहन के लिए प्राकृतिक अवस्था ही सर्वोच्च प्रकार है। जिसका अर्थ है राज्यगत व्यवस्था से विहीन समाज! ऐसी कल्पना की जा सकती है कि इस स्थिति में समाज सन्तुलित रहे तो यह सर्वोच्चतम प्रकार की आदर्श स्थिति है और किसी भी कारण से यदि समाज में असन्तुलन पनपे तो इसे जंगल राज कहना उचित रहेगा। मेरे विचार से वर्तमान में उपस्थित सामाजिक लक्षणों के अनुसार मानव सभ्यता सम्भवतः ही राज्यगत व्यवस्था से विहीन ढाँचे को स्वीकार कर सके! अभी यह असम्भव कार्य लगता है और सम्भवतः इसी तथ्य का उत्तर खोजते-खोजते मानव सभ्यता लोकतन्त्रीय व्यवस्था के प्रारूप तक पहूँची है जो कि दुनिया के विभिन्न देशों में अभी आंशिक रूप से ही स्थापित हो पाया है। मूल रूप से लोकतन्त्रीय व्यवस्था के अन्तर्गत समाज में व्यवस्था का प्रबन्धन करने के लिए राज्य को शक्ति संग्रह करने का स्वतन्त्र अधिकार नहीं होता है। लोकतन्त्र की समाजशास्त्रीय परिभाषा के अनुसार शक्ति का विभिन्न स्तरों पर विभाजन होना चाहिए। किसी भी स्तर पर शक्ति विभाजन न आवश्यकता से अधिक हो और न आवश्यकता से कम। यह धारणा समाजशास्त्रीय लोकतन्त्र का दर्शन है। क्योंकि यह जनता की अपनी व्यवस्था है। दूसरी ओर राजनेताओं का दृष्टिकोण लोकतन्त्र का अर्थ जनता और व्यवस्था के रूप में स्पष्ट करता है। लोकतन्त्र के इस प्रकार में राज्यगत व्यवस्था अपने अस्तित्व को समाज से इस प्रकार स्वतन्त्र रूप से स्वीकार करती है कि राज्य, समाज की व्यवस्था की नियामक इकाई है। लोकतन्त्र के राजनीतिशास्त्रीय प्रारूप में जनता, राज्य को केवल नियुक्त करती है, उसका राज्य पर कोई नियन्त्रण नहीं होता है। यह भरसक रूप से जनता का हित करने के लिए स्वयं को नियमबद्ध करता है लेकिन इसकी समाज पर शासन करने की इच्छा, इसे आमजन से दूर करती चली जाती है। राजनीति की यह इच्छा जब भी समाज के सामने संविधान की भाषा के रूप में प्रकट होती है, सत्ता को समाज के विरूद्ध एक बहुत क्रूर वर्ग के रूप में स्थापित कर देती है। भारत में इसी प्रकार का लोकतन्त्र स्थापित है अर्थात समाज, राजनीति के षडयन्त्र का शिकार है। ....यह विश्लेषण हमारे सामने यह प्रश्न खडा करता है कि यदि समाज में शक्ति का केन्द्रीयकरण समस्याओं के जन्म का कारण है तो शक्ति के समुचित विभाजन के विभिन्न स्तर और प्रकार का निर्धारण कैसे होगा, हमे ऐसी व्यवस्था का कोई खाका तो समाज के सामने प्रस्तुत करना होगा जिसे यथावत या यथार्थपरक परिवर्तन के साथ समाज अपनी इच्छा से स्वीकार कर सके!

.... प्रोफेसर श्रीवास्तव गम्भीरता पूर्वक चिन्तन मग्न होते हैं। इससे पहले कि वह आगे कुछ सोचते तो दरवाजे पर किसी आगन्तुक की दस्तक उनके चिन्तन-क्रम को भंग कर देती है। प्रोफेसर, आगन्तुक की दस्तक पर दरवाजा खोलते है तो दरवाजे पर खां व सिमी होते हैं। प्रोफेसर कहते हैं- खां क्या तुम्हें भी इस घर में आने के लिए दरवाजे पर दस्तक देने की जरूरत है?

तहजीब का तकाजा है मेरे भाई।

छोडो इन बातो को। हमे नाहक औपचारिकताओं में नहीं फँसना चाहिए। अन्दर आओ फिर आराम से बाते करेगे।

....कुछ समय बाद-क्या बात है खां, आज बहुत मायूस नजर आ रहे हो, क्या मैं वजह जान सकता हूँ?

परेशानी की वजह तो मैं अपने साथ लेकर आया हूँ प्रोफेसर!

लेकिन मुझे तो तुम्हारे साथ सिमी नजर आ रही है खां।

किसी परेशानी की वजह नहीं।

यही तो परेशानी की वजह है प्रोफेसर। एक अच्छे घर से इसका रिश्ता आया है लेकिन यह अभी शादी करने से इंकार कर रही है।

इसका कोई कारण है सिमी!

संस्थागत सामाचार

लोक स्वराज यात्रा 11 मई 2026 तारीख को रामानुजगंज से उड़ीसा के भुवनेश्वर के लिए निकली, जिसमें ज्ञान के परिवार के संजय तिवारी एवं रॉबिन विश्वास भुवनेश्वर पहुंचकर संस्थान के वरिष्ठ साथी शुभेंदु महापात्रा से मिले। उनके सानिध्य में भुवनेश्वर, कटक, खुर्दा, पुरी आदि स्थानों पर ज्ञान केंद्रों की स्थापना हेतु विभिन्न लोगों से मुलाकात, बैठक एवं चर्चाएं हुईं। इस दौरान यात्रा ने महावीर आश्रम एकचड़िया में अपना विश्राम स्थल बनाया। यह स्थान आदरणीय विष्णु गिरी जी महाराज के सानिध्य एवं सहयोग से प्राप्त हुआ था। तत्पश्चात 18 मई 2026 को अपने समस्त साथियों के साथ यह यात्रा भुवनेश्वर से निकलकर जूनागढ़, कालाहांडी में बाबा शरण दास जी के आश्रम “अनंत हरिहरा गौशाला, कालाहांडी” पहुंची, जहां आवास एवं भोजन की व्यवस्था बाबा शरण दास जी की ओर से आश्रम में उपलब्ध थी। बाबा शरण दास जी के सानिध्य में 19 मई 2026 को अगल-बगल के गांवों में तीन बैठकें तथा 20 मई 2026 को एक बैठक संपन्न हुई। 20 मई 2026 को शाम 6:30 बजे यात्रा के साथी शुभेंदु जी बस से भुवनेश्वर के लिए तथा अन्य साथी बोलेरो से रायपुर के लिए प्रस्थान किए। रायपुर में एक रात रुकने एवं यात्रा की चर्चा आदरणीय श्री बजरंग मुनि जी से करने के बाद 21 मई 2026 को शाम 4:00 बजे वर्तमान ऊर्जा चुनौतियों के समाधान में अपनी भूमिका निभाते हुए एलेक्ट्रिक वाहन द्वारा यात्रा रामानुजगंज कार्यालय के लिए निकल पड़ी अब आगे की यात्रा का यही हमारा साधन है तथा 22 मई 2026 को प्रातः 6:00 बजे यात्रा रामानुजगंज कार्यालय पर समाप्त हुई।